पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

2025 का आपराधिक रिट क्षेत्राधिकार मामला सं.196

थाना-कांड संख्या-4 वर्ष-2024 थाना- ई.सी.आई.आर. (सरकारी अधिकारी) जिला- पटना से उद्धृत

==========

उत्तम डागा उर्फ उत्तम कुमार डागा पुत्र- हरिरतन डागा, निवासी सी. एफ.- 374, साल्ट लेक सिटी, सेक्टर-1, थाना- बिधाननगर (एम), जिला उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल

..... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. भारत संघ द्वारा सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय, पटना अंचल कार्यालय, बिहार के माध्यम से

2. सहायक निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय, पटना क्षेत्रीय कार्यालय, पटना बिहार

3. जेल अधीक्षक, बेउर जेल, किसान कॉलोनी, अनीसाबाद, पटना, बिहार, 800002 बिहार

..... प्रतिवादी/ओं

==========

उपस्थिति :

याचिकाकर्ता/ओं के लिए	:	श्री जितेन्द्र सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता
		श्री हर्ष सिंह, अधिवक्ता
उत्तरदाता/ओं के लिए	:	श्री डॉ. कृष्ण नंदन सिंह (एएसजी)
ईडी के लिए	:	श्री जोहेब हुसैन, विशेष पी.पी.
		श्री मनोज कुमार सिंह, विशेष पी. पी.
		श्री प्रभात कुमार सिंह, विशेष पी. पी.
		श्री प्रांजल त्रिपाठी, अधिवक्ता
		श्री अंकित कुमार सिंह, अधिवक्ता

==========

भारत का संविधान---अनुच्छेद 21, 22(2), 20(3), 226---सीआरपीसी----धारा 57, 167----बीएनएसएस---धारा 3(2), 58, 187---धन शोधन निवारण अधिनियम (पीएमएलए)---धारा 2(1)(एनए), 3, 16, 17, 19, 46, 47, 65, 67---अनुच्छेद 22(2) की व्याख्या---रिट याचिका में यह घोषित करने की मांग की गई है कि 25.01.2025 को अपराह्न 3:30 बजे कोलकाता में याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के बाद उसे हिरासत में लेना और उसके बाद 21:00 बजे पटना के विद्वान सीजेएम के समक्ष उसे पेश करना, जबकि उसे कोलकाता में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया या ट्रांजिट रिमांड का कोई आदेश नहीं मांगा गया, यह अवैध है और याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है---याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि प्रवर्तन निदेशालय (डीओई) ने अपराध में उसकी संलिप्तता के बारे में कोई राय/व्यक्तिपरक संतुष्टि बनाये बिना याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया और गिरफ्तारी के तुरंत बाद उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया, इसके बजाय, उसे उसी दिन गिरफ्तारी के बाद पटना ले जाया गया और लगभग 09.00 बजे रात को आरोपी को विद्वान सीजेएम, पटना के समक्ष पेश किया गया, जिन्होंने उसे डीओई की हिरासत में भेज दिया।

निष्कर्ष: डीओई ने पाया कि अभियुक्त को गिरफ्तारी के तुरंत बाद हवाई मार्ग से एक घंटे दस मिनट के भीतर पटना लाया जा सकता था और उसने उक्त मार्ग का सहारा लिया तथा अभियुक्त को ईडी की हिरासत में रिमांड के लिए आवेदन के साथ पटना के विद्वान सीजेएम के समक्ष प्रस्तुत किया --- संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार, यात्रा में लगे समय को छोड़कर, गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करना होता है --- केवल तभी जब यात्रा में 24 घंटे से अधिक समय लगने की संभावना हो, गिरफ्तार व्यक्ति को स्थानीय मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करना होता है और ट्रांजिट रिमांड प्राप्त करना होता है --- यदि गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटे से पहले प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, तो उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करना होता है --- चूंकि, वर्तमान मामले में, अभियुक्त को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर प्रस्तुत किया गया था, इसलिए गिरफ्तारी के स्थान के निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष उसे प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनिवार्य नहीं थी गिरफ्तार किया गया--- यदि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए बिना 24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है तो उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना जाता है--- वर्तमान मामले में ऐसा कोई उल्लंघन नहीं हुआ---रिट खारिज की जाती है। ***(पैरा 90, 92, 94, 95, 99, 100)***

पीएमएलए के तहत तलाशी और जब्ती---तलाशी और जब्ती शुरू करने से पहले, ईडी के अधिकृत अधिकारी को यह मानने के कारणों के संबंध में एक राय बनानी चाहिए कि किसी व्यक्ति ने - (i) ऐसा कोई कार्य किया है जो मनी लॉन्ड्रिंग का गठन करता है (ii) या उसके पास मनी लॉन्ड्रिंग में शामिल अपराध की कोई आय है या (iii) उसके पास मनी लॉन्ड्रिंग से संबंधित कोई रिकॉर्ड है और (iv) उसके पास अपराध से संबंधित कोई संपत्ति है --- याचिकाकर्ता ने, वर्तमान मामले में, इस बात पर विवाद नहीं किया है कि गिरफ्तार करने वाले अधिकारी ने पीएमएलए की धारा 19(1) के तहत इस तरह के विश्वास के कारणों को काले और सफेद में दर्ज किया, गिरफ्तारी के आधार की प्रतिलिपि तैयार की और आरोपी को दी और पूरे तथ्य को विद्वान सीजेएम, पटना के विचार के लिए रिमांड आदेश में विस्तार से बताया गया था --- इसलिए, पीएमएलए की धारा 19(1) में परिकल्पित जादुई शब्द "विश्वास करने के कारण" को बताने में विद्वान सीजेएम की ओर से विफलता को एक अनजाने में हुई चूक के रूप में माना जाना चाहिए न कि एक त्रुटि मामले की जड़ तक पहुंचता है। (पैरा 79-81)

(2022) 13 एससीसी 542, 2014 एससीसी ऑनलाइन डेल 3012, (2021) 16 एससीसी 536

*..... ....**पर भरोसा किया गया।***

एआईआर 1965 एससी 1107 *.....**संदर्भित**।*

==========

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

कोरम : माननीय न्यायमूर्ति श्री बिबेक चौधरी
सी.ए.वी. निर्णय

तारीखः 08-04-2025

1. अनगिनत बार, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22, विशेष रूप से अनुच्छेद 22(2) का दायरा और तात्पर्य न्यायिक व्याख्या और इस प्रश्न के संबंध में विचार के लिए आया कि क्या गिरफ्तार करने वाले अधिकारी/एजेंसी के लिए गिरफ्तार व्यक्ति को

उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना अनिवार्य है या "निकटतम मजिस्ट्रेट" शब्द अभियुक्त को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश करने के संबंध में क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट तक विस्तारित होता है।

2. इस रिट याचिका में दूसरे प्रश्न के अतिरिक्त विधि का वही प्रश्न उठाया गया है कि क्या रिमांड आदेश रिट क्षेत्राधिकार के अधीन है, विशेष रूप से तब जब यह आरोप लगाया गया हो कि पुलिस हिरासत या विशेष जांच एजेंसी की हिरासत में अभियुक्त को रिमांड पर लेते समय विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा वैधानिक अभियोग पर विचार नहीं किया गया है।

3. अब तथ्य।

4. ईसीआईआर संख्या पीटीजेडओ/04/2024, दिनांक 14 मार्च, 2024 (प्रवर्तन निदेशालय, पटना बनाम संजीव हंस एवं अन्य) के संबंध में एफआईआर संख्या 18/2023, दिनांक 9 जनवरी, 2023, रूपसपुर पुलिस स्टेशन, पटना में उपरोक्त नामित संजीव हंस, आईएएस सदस्य; गुलाब यादव, पूर्व विधायक, राजद; और अन्य, ईडी ने 25 जनवरी, 2025 को उत्तम डागा, याचिकाकर्ता के घर पर छापेमारी की, ताकि परिसर सीएफ-374 साल्ट लेक सिटी, सेक्टर-1, कोलकाता-700064 में धन शोधन में उनकी भूमिका की जांच की जा सके। डीओई के अधिकारियों ने याचिकाकर्ता के स्वामित्व वाले और कब्जे वाले घर और अन्य स्थानों पर तलाशी ली और तलाशी के दौरान उनके पास उनके द्वारा एकत्र की गई सामग्रियों के आधार पर यह विश्वास करने का कारण था कि याचिकाकर्ता धन शोधन निवारण अधिनियम, (इसके बाद "पीएमएलए" के रूप में वर्णित) के तहत अपराध करने का *प्रथम दृष्टया* दोषी है। तदनुसार, उसे लगभग 03:30 बजे गिरफ्तार किया गया।

5. याचिकाकर्ता की शिकायत है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22(2) के साथ बीएनएसएस की धारा 187 के अनुसार, डीओई ने याचिकाकर्ता को गिरफ्तारी के तुरंत बाद निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया। इसके विपरीत, उसे उसी दिन गिरफ्तारी के बाद पटना ले जाया गया और लगभग 09.00 बजे, आरोपी को पटना के विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष पेश किया गया, जिन्होंने उसी दिन लगभग 09.00 बजे एक आदेश पारित करके उसे डीओई की हिरासत में भेज दिया।

6. याचिकाकर्ता ने अपनी गिरफ्तारी की पूरी प्रक्रिया, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पटना के समक्ष उनकी पेशी और गिरफ्तारी के तुरंत बाद उन्हें निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने में डीओई की ओर से विफलता को चुनौती दी है, जो कथित तौर पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22(2) का उल्लंघन है। यह भी आरोप लगाया गया है कि डीओई ने बीएनएसएस की धारा 58 और 187 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है।

7. पूरक हलफनामा दायर करके यह आरोप लगाया गया है कि विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पटना द्वारा 25 जनवरी, 2025 को पारित आदेश कानून की दृष्टि से गलत है, क्योंकि रिमांड का आदेश इस बात पर विचार किए बिना पारित किया गया था कि क्या डीओई पीएमएलए की धारा 19 के अस्तित्व के संबंध में *प्रथम दृष्टया* संतुष्ट है। याचिकाकर्ता के अनुसार, दिनांक 25 जनवरी, 2025 का विवादित आदेश अवैध, निष्क्रिय और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 का उल्लंघन है।

8. उपरोक्त तथ्यों के आधार पर याचिकाकर्ता ने तत्काल रिट याचिका दायर की है, जिसमें निम्नलिखित राहत की प्रार्थना की गई है:-

> *"क) यह घोषणा करने के लिए कि याचिकाकर्ता की 25.01.2025 को अपराह्न 3:30 बजे कोलकाता, पश्चिम बंगाल में*

गिरफ्तारी के बाद हिरासत में लिया जाना और उसके बाद 21:00 बजे विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी पटना के समक्ष पेश किया जाना, जबकि याचिकाकर्ता को कोलकाता, पश्चिम बंगाल में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया गया था या उनसे ट्रांजिट रिमांड का कोई आदेश नहीं मांगा गया था, अवैध है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 तथा बी.एन.एस.एस. की धारा 187 (दं. प्र. सं. की धारा 167 के समरूप) का उल्लंघन है।

ख) मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के दिनांक 25.01.2025 के आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए। .., पटना, जिसके लिए विद्वान द्वारा 27.01.2025 को अपेक्षित दस्तावेज दाखिल करके आवेदन किया गया है, जब भी वह याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराया जाता है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया है और परिणामस्वरूप इसे रद्द करने के लिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 (2) और बी.एन.एस.एस. की धारा 187 (धारा 167 दं. प्र. सं. के समरूप) का उल्लंघन करने वाली अवैध हिरासत को न्यायिक रिमांड के आदेश द्वारा मान्य नहीं किया जा सकता है।

ग) याचिकाकर्ता को ईसीआईआर संख्या पीटीजेडओ/04/2024 (जिसे आगे "ईसीआईआर" कहा जाएगा) के संबंध में तत्काल रिहा करने का निर्देश देने के लिए, जो विद्वान सत्र न्यायाधीश सह विशेष न्यायाधीश (पीएमएलए) पटना की अदालत के समक्ष लंबित है।

घ) तत्काल रिट आवेदन के लंबित रहने के दौरान पटना के विद्वान सत्र न्यायाधीश सह विशेष न्यायाधीश (पीएमएलए) की अदालत के समक्ष लंबित ईसीआईआर संख्या पीटीजेडओ/04/2024 (जिसे आगे "ईसीआईआर" कहा जाएगा) से याचिकाकर्ता को मुक्त करने के लिए अंतरिम निर्देश।

ई) किसी अन्य राहत के लिए जिसके लिए याचिकाकर्ता मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हकदार पाया जा सकता है।

9. याचिकाकर्ता की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री जितेंद्र सिंह शुरू में मामले के उचित निर्णय के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 का उल्लेख करते हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 को नीचे पुनः प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है।

"22. कुछ मामलों में गिरफ्तारी और हिरासत के विरुद्ध संरक्षण

(1) गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति को, यथाशीघ्र, ऐसी गिरफ्तारी के कारणों की जानकारी दिए बिना हिरासत में नहीं रखा जाएगा और न ही उसे अपनी पसंद के किसी कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव करवाने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

(2) गिरफ्तार किए गए और हिरासत में रखे गए प्रत्येक व्यक्ति को, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट की अदालत तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, ऐसी गिरफ्तारी के चौबीस घंटे की अवधि के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया

जाएगा और ऐसे किसी भी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक हिरासत में नहीं रखा जाएगा।

(3) खंड (1) और (2) में कुछ भी लागू नहीं होगा-

(क) किसी ऐसे व्यक्ति पर जो फिलहाल शत्रु विदेशी है; या

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति पर जो निवारक हिरासत के लिए प्रावधान करने वाले किसी कानून के तहत गिरफ्तार या हिरासत में है।

(4) निवारक निरोध किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध करने को अधिकृत नहीं करेगा, जब तक कि-

(क) ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बना सलाहकार बोर्ड, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, या रहे हैं, या नियुक्त होने के योग्य हैं, ने तीन महीने की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले प्रकाशित नहीं दी है कि उसकी राय में ऐसे निरुद्ध करने के लिए पर्याप्त कारण हैं:

*परन्तु इस उप-खण्ड में कोई भी बात किसी व्यक्ति को संसद द्वारा खंड **(7)** के उप-खण्ड **(ख)** के अधीन बनाए गए किसी कानून द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से अधिक निरुद्ध करने को अधिकृत नहीं करेगी; या*

(ख) ऐसे व्यक्ति को संसद द्वारा खंड (7) के उप-खण्ड (क) और (ख) के अधीन बनाए गए किसी कानून के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध किया गया है।

(5) जब किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का प्रावधान करने वाले किसी कानून के अधीन किए गए आदेश के अनुसरण में निरुद्ध किया जाता है, तो आदेश देने वाला प्राधिकारी, यथाशीघ्र, ऐसे व्यक्ति को उन आधारों की सूचना देगा, जिन पर उसे निरुद्ध किया गया है। आदेश पारित हो चुका है और उसे आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का शीघ्रतम अवसर प्रदान किया जाएगा।

(6) खंड (5) की कोई बात उस खंड में निर्दिष्ट कोई आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने की आवश्यकता नहीं होगी जिन्हें ऐसा प्राधिकारी सार्वजनिक हित के विरुद्ध मानता है।

(7) संसद विधि द्वारा विहित कर सकती है-

(क) वे परिस्थितियां जिनके अधीन और ऐसे मामलों का वर्ग या वर्ग जिनमें किसी व्यक्ति को खंड (4) के उपखंड (क) के उपबंधों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निवारक निरोध का उपबंध करने वाले किसी कानून के अधीन तीन महीने से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है।

(ख) वह अधिकतम अवधि जिसके लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाले किसी कानून के अधीन किसी

वर्ग या वर्गों के मामलों में निरुद्ध किया जा सकता है; और (ग) खंड (4) के उपखंड (क) के अधीन जांच में सलाहकार परिषद् द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया।"

10. अनुच्छेद 22 के खंड (2) के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, श्री सिंह द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अनुच्छेद 22 (2) की आवश्यकता कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को एक विशेष समय के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए, निश्चित रूप से अपराध के स्थान या उस स्थान के संदर्भ में क्षेत्रीयता के परीक्षण से बंधा नहीं है जहां संबंधित आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। संविधान का अधिदेश यह है कि किसी भी अपराध या आपराधिक मामले के संबंध में हिरासत में लिए गए और हिरासत में लिए गए व्यक्ति को निकटतम मजिस्ट्रेट यानी गिरफ्तारी और निरोध के स्थान के निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना होगा, इस सवाल के बावजूद कि अपराध किया गया हो सकता है या आपराधिक मामला किसी अन्य मजिस्ट्रेट या अदालत के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी अलग और दूर के स्थान पर दर्ज किया गया हो सकता है।गिरफ्तारी के बाद निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का उद्देश्य गिरफ्तार व्यक्ति को एक स्वतंत्र और जिम्मेदार प्राधिकारी, अर्थात् मजिस्ट्रेट के निपटान में खुद को रखने का अवसर देना है ताकि मजिस्ट्रेट मामले की जांच कर सके और ऐसा आदेश पारित कर सके जो गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर या अन्यथा हिरासत में लेने, हिरासत में रखने, पेश करने या रिहा करने के संबंध में कानून के अनुसार आवश्यक या वारंट माना जाए। कोई व्यक्ति जिसे गैर-जमानती अपराध के सिलसिले में गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, वह बीएनएसएस की धारा 480 के तहत जमानत के लिए प्रार्थना कर सकता है और संबंधित मजिस्ट्रेट को कानून के अनुसार जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार करना होगा। मजिस्ट्रेट जमानत के लिए प्रार्थना को अस्वीकार भी

कर सकता है और गिरफ्तार व्यक्ति को कानून के अनुसार उचित हिरासत में रखने का आदेश भी दे सकता है।

11. बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) की धारा 3 (2) यह स्पष्ट करती है कि जहां बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के अलावा किसी अन्य कानून के तहत, मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किया जाने वाला कार्य उन मामलों से संबंधित है जिनमें साक्ष्य की सराहना या छान-बीन या कोई निर्णय तैयार करना शामिल है जो किसी व्यक्ति को किसी भी सजा या दंड या हिरासत में या हिरासत में जांच, जांच या मुकदमे के लिए उजागर करता है या उसे किसी भी अदालत के समक्ष मुकदमे के लिए भेजने का प्रभाव डालता है, वे इस बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के प्रावधानों के अधीन, न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं या यदि मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किया जाने वाला कार्य उन मामलों से संबंधित है जो प्रशासनिक या कार्यकारी प्रकृति के हैं। जैसे कि अनुज्ञप्ति प्रदान करना, अनुज्ञप्ति का निलंबन या रद्द करना, अभियोजन को मंजूरी देना या अभियोजन से पीछे हटना, वे, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किए जाने योग्य होंगे। चूंकि अनुच्छेद 22(2) के अनुपालन में मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को पेश करने का मूल उद्देश्य गिरफ्तार व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के अधीन करना है, जिससे मजिस्ट्रेट को यह विचार करने और निर्णय लेने की आवश्यकता होती है कि क्या उसे हिरासत में रखने का निर्देश दिया जाना चाहिए और यदि हां, तो किसकी हिरासत में या किसी अन्य न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना चाहिए या उसे जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए या अन्यथा, उक्त अनुच्छेद 22(2) की आवश्यकता उसे मामले की सुनवाई करने के लिए क्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाले निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करके पूरी नहीं की जा सकती।

12. श्री सिंह द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) की धारा 187 गिरफ्तार व्यक्ति (चाहे वारंट के साथ गिरफ्तार किया गया हो या वारंट के बिना) को निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने पर भी विचार करती है और ऐसी न्यायिक मजिस्ट्रेट को अधिकार देती है, चाहे उसके पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो या न हो, ताकि आरोपी को पूरी तरह से 15 दिनों से अधिक की नहीं सुनवाई के लिए उचित हिरासत में हिरासत में रखने को अधिकृत किया जा सके, और यदि ऐसे मजिस्ट्रेट के पास मामले की सुनवाई करने या इसे सुनवाई के लिए करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो वह आरोपी को ऐसी अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजने का आदेश दे सकता है। श्री सिंह के अनुसार, यह प्रावधान स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अनुच्छेद 22 (2) के अधिदेश के साथ-साथ धारा 187 की आवश्यकता के अनुपालन में गिरफ्तार व्यक्ति को जिस निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना है, वह आवश्यक रूप से मजिस्ट्रेट होने की आवश्यकता नहीं है, जिसके पास मामले की सुनवाई करने या इसे मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध करने का अधिकार क्षेत्र हो।दूसरे शब्दों में, उन्होंने इस न्यायालय को यह समझाने की कोशिश की कि किसी गिरफ्तार व्यक्ति को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना गिरफ्तारी अधिकारी/एजेंसी का कर्तव्य है।भले ही उसके पास मुकदमा चलाने या मुकदमा चलाने के लिए क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र न हो।अभियुक्त को जल्द से जल्द अपनी गिरफ्तारी को चुनौती देने और जमानत के लिए प्रार्थना करने का अवसर देने के लिए संविधान के साथ-साथ दं. प्र. सं. . (दंड प्रक्रिया संहिता) अब बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) में इस प्रावधान पर विचार किया गया है।"निकटतम मजिस्ट्रेट"शब्द को "न्यायिक क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट" शब्द द्वारा पूरक नहीं किया जा सकता है।

13. अपने तर्क को और स्पष्ट करने के लिए, श्री सिंह अगला मेरा ध्यान "नए अनुच्छेद 15 ए"की शुरूआत के मुद्दे पर संविधान सभा की बहस के प्रासंगिक भागों की ओर आकर्षित करते हैं, जिसे वर्तमान में संविधान में अनुच्छेद 22 के रूप में संहिताबद्ध किया गया है।संविधान सभा की बहस में यह दर्ज है: "इसलिए अब हम अनुच्छेद 15 ए को प्रस्तुत करके, अगर मैं ऐसा कह सकता हूँ, तो अनुच्छेद 15 को पारित करने में जो कुछ किया गया है, उसके लिए क्षतिपूर्ति कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, हम अनुच्छेद 15-ए को प्रस्तुत करके "उचित प्रक्रिया" के कानून के सार के लिए प्रावधान कर रहे हैं।

"अनुच्छेद 15-ए केवल दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों से दो सबसे मौलिक सिद्धांतों को हटाता है, जिनका प्रत्येक सभ्य देश अंतर्राष्ट्रीय न्याय के सिद्धांतों के रूप में पालन करता है। यह बिल्कुल सच है कि खंड (1) और खंड (2) में निहित ये दो प्रावधान पहले से ही दंड प्रक्रिया संहिता में पाए जाते हैं और इसलिए संभवतः यह कहा जा सकता है कि हम वास्तव में कोई बहुत मौलिक परिवर्तन नहीं कर रहे हैं। लेकिन हम, जैसा कि मैं तर्क देता हूं, एक मौलिक परिवर्तन कर रहे हैं क्योंकि हम अनुच्छेद 15-ए को पेश करके संसद और प्रांतीय विधानमंडल दोनों के अधिकार पर एक सीमा लगा रहे हैं कि वे इन दो प्रावधानों को निरस्त न करें, क्योंकि वे अब हमारे संविधान में ही पेश किए गए हैं।"

14. इसलिए, श्री सिंह द्वारा प्रस्तुत किया जाता है कि एक गिरफ्तार व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने का मौलिक अधिकार है।श्री सिंह के अनुसार, प्रत्येक गिरफ्तारी गिरफ्तार व्यक्ति के जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उल्लंघन करती है, यदि ऐसी गिरफ्तारी कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा की जाती है।इसलिए, एक अभियुक्त को यह आंदोलन करने का तत्काल अवसर मिलना चाहिए कि उसकी गिरफ्तारी किसी भी या सभी

प्रावधानों के उल्लंघन के लिए कानून की उचित प्रक्रिया के अनुसार नहीं थी, जिसके तहत उसे गिरफ्तार किया गया है।अनुच्छेद 22 (2) को लागू करने का यही उद्देश्य है। इसलिए, डी. ओ. ई. ने अभियुक्त को निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं करके संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन किया।

15. दूसरे शब्दों में, श्री सिंह प्रस्तुत करते हैं कि "निकटतम मजिस्ट्रेट"शब्द को "क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट"शब्द द्वारा पूरक नहीं किया जा सकता है।

16. अनुच्छेद 22(2), बीएनएसएस की धारा 187, बीएनएसएस की धारा 58 और गिरफ्तारी के बाद 24 घंटे के भीतर आरोपी को पेश करने से संबंधित अन्य प्रावधानों की व्याख्या के मुद्दे पर याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील ने सबसे पहले ***मधु लिमये और अन्य*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया, जो ***(1969) 1 एससीसी 292*** में प्रकाशित किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील ने उक्त निर्णय के पैराग्राफ 10 का बहुत जोर देकर उल्लेख किया है और इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

> *"10. अनुच्छेद 22(1) एक नियम को समाहित करता है जिसे हमेशा सभी कानूनी प्रणालियों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण और मौलिक माना जाता है जहां कानून का शासन प्रबल होता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के 6 वें संशोधन में समान प्रावधान हैं और इसी तरह अनुच्छेद 34 में भी जापानी संविधान 1946. इंग्लैंड में जब भी बिना वारंट के गिरफ्तारी की जाती है, तो गिरफ्तार व्यक्ति को न केवल यह सूचित करने का अधिकार है कि उसे गिरफ्तार किया जा रहा है, बल्कि गिरफ्तारी के कारणों या आधारों के बारे में भी। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने क्रिस्टी बनाम*

लीचिंस्की [[1947] ए.सी. 573: (1947) 1 ऑल ईएलआर 567] में इस नियम की उत्पत्ति और विकास पर विचार किया। विस्काउंट साइमन के शब्दों में, यदि कोई पुलिसकर्मी, जिसे यह उचित संदेह है कि एक्स ने कोई गंभीर अपराध किया है, उसे गिरफ्तार करने और उसे पुलिस स्टेशन ले जाने की स्वतंत्रता है, बिना यह बताए कि वह ऐसा क्यों कर रहा है, तो प्रथम दृष्टया व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का गंभीर उल्लंघन होगा। विस्काउंट साइमन ने कई प्रस्ताव रखे, जो संपूर्ण नहीं थे। हमारे उद्देश्यों के लिए हम पहले और तीसरे का उल्लेख कर सकते हैं:

"1. यदि कोई पुलिसकर्मी किसी गुंडागर्दी या अन्य प्रकार के अपराध के उचित संदेह पर बिना वारंट के गिरफ्तार करता है, जिसके लिए वारंट की आवश्यकता नहीं होती है, तो उसे सामान्य परिस्थितियों में गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के वास्तविक कारण के बारे में सूचित करना चाहिए। वह कारण को अपने पास रखने या ऐसा कारण बताने का हकदार नहीं है जो वास्तविक कारण नहीं है। दूसरे शब्दों में, एक नागरिक यह जानने का हकदार है कि उसे किस आरोप या किस अपराध के संदेह पर पकड़ा गया है।

*2. * * **

3. यह आवश्यकता कि गिरफ्तार व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से उस कारण के बारे में सूचित किया जाना चाहिए, यदि परिस्थितियां ऐसी हैं कि उसे उस कथित अपराध की सामान्य प्रकृति को जानना चाहिए जिसके लिए उसे हिरासत में लिया गया है।"

17. मधु लिमये (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को गिरफ्तारी के आधार बताए बिना उसकी नजरबंदी के संदर्भ में पूर्वगामी अनुच्छेद में टिप्पणी की।याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पुलिस अधिकारियों द्वारा आई. पी. सी. (भारतीय दंड संहिता) की धारा 188 के तहत अपराधों के लिए की गई थी जो गैर-संज्ञेय थे।इसलिए, अधिकारियों ने गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को उस अपराध की गिरफ्तारी का कारण नहीं बताया जिसके लिए उन्हें हिरासत में लिया गया था।ऐसी पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 22 का खंड (2) सबसे अधिक भौतिक सुरक्षा प्रदान करता है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को ऐसी गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए ताकि न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाला एक स्वतंत्र प्राधिकारी बिना किसी देरी के अपने मामले में अपना विवेक लगा सके।

18. इस मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि याचिकाकर्ता के 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश होने के अधिकार का उल्लंघन किया गया है और "निकटतम मजिस्ट्रेट" शब्द को उसका शाब्दिक अर्थ दिया जाना चाहिए और अनुच्छेद 22 (2) के दायरे का विस्तार करने के लिए कोई प्रासंगिक अर्थ लगाने की अनुमति नहीं है।

19. श्री सिंह इसके बाद ***भारत संघ और अन्य बनाम तुलसीराम पटेल, (1985) 3 एस.सी.सी. 398*** में प्रकाशित किए गए मामले में संविधान पीठ के फैसले का उल्लेख करते हैं। यह निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के दायरे से संबंधित है जिसमें कहा गया है कि संघ और राज्यों के तहत सेवा में किसी भी व्यक्ति को बर्खास्त या हटाया या रैंक में कम नहीं किया जाएगा, सिवाय एक जांच के, जिसमें उसे उसके खिलाफ आरोपों के बारे में सूचित किया गया है और उन आरोपों के संबंध

में सुनवाई का उचित अवसर दिया गया है।दूसरे शब्दों में, आरोप के लेखों को तैयार करके और दोषी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर देकर विभागीय जांच के बिना, उसे बर्खास्त, हटाया या पद से कम नहीं किया जाएगा।संविधान के अनुच्छेद 311 (2) की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 70 में कहाः

> *"70. उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति सामने आती है वह यह है कि दूसरे परंतुक के मुख्य शब्द उस परंतुक के प्रत्येक खंड को नियंत्रित करते हैं और किसी सरकारी कर्मचारी को किसी भी प्रकार का अवसर देने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते हैं।वाक्यांश "यह खंड लागू नहीं होगा"अनिवार्य है और निर्देशिका नहीं है।यह एक संवैधानिक निषेधात्मक निषेधाज्ञा की प्रकृति है जो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अनुच्छेद 311 (2) के तहत जांच करने या संबंधित सरकारी कर्मचारी को किसी भी प्रकार का अवसर देने से रोकता है।इस प्रकार दूसरे परंतुक में अनुमान या निहितार्थ की प्रक्रिया द्वारा किसी प्रकार की जांच या अवसर को शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है।मैक्सिम "एक्सप्रेसम फेसिट सेसारे टैसिटम" ("जब कुछ चीजों का स्पष्ट उल्लेख होता है, तो जो कुछ भी उल्लेख नहीं किया जाता है उसे बाहर रखा जाता है") मामले पर लागू होता है।"*

20. तत्काल मामले पर आते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि क़ानून की व्याख्या का उपरोक्त सिद्धांत अनुच्छेद 22 (2) में भी लागू होता है। उनके अनुसार, "निकटतम मजिस्ट्रेट" का अर्थ है वह मजिस्ट्रेट जो गिरफ्तारी के स्थान के सबसे निकट बैठता है, इस प्रश्न पर ध्यान दिए बिना कि उसके पास क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र है या नहीं।

21. अपना तर्क देते हुए श्री सिंह ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले ***सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत के चुनाव आयोग*** के मामले में, ***(2008) 14 एस. सी. सी. 318*** में प्रकाशित की गई का उल्लेख किया।

22. यह मामला एक राजनीतिक दल के प्रतीक को जब्त करने से संबंधित है जिसे पहले एक आरक्षित प्रतीक के साथ आवंटित किया गया था, लेकिन बाद में मान्यता खोने के कारण, प्रतीक को जब्त कर लिया गया था।उपरोक्त निर्णय का तथ्यात्मक पहलू इस मामले के तथ्यों से पूरी तरह से अलग है।अपीलार्थी ने भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा जारी चुनाव प्रतीक (आरक्षण और आवंटन) आदेश, 1968 के पैरा 10-ए के तहत एक राजनीतिक दल के प्रतीक को फ्रीज करने के उच्च न्यायालय द्वारा एक रिट याचिका में पारित फैसले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी।प्रतीक आदेश राजनीतिक दलों के प्रतीकों से संबंधित है। प्रतीक आदेश राजनीतिक दलों के प्रतीकों से संबंधित है। पैरा 10-ए का सीमांत शीर्षक बताता है कि यह पैरा "किसी गैर-मान्यता प्राप्त पार्टी द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों को रियायत" से संबंधित है, जिसे पहले राष्ट्रीय या राज्य पार्टी के रूप में मान्यता प्राप्त थी। पैरा 10-ए का मुख्य प्रावधान इस प्रकार है:-

"यदि कोई राजनीतिक दल, जो वर्तमान में मान्यता प्राप्त नहीं है, लेकिन चुनाव की अधिसूचना की तारीख से छह साल से पहले किसी भी राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय या राज्य दल था, किसी भी राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव में एक उम्मीदवार स्थापित करता है, चाहे वह दल पहले उस राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में मान्यता प्राप्त था या नहीं, तो ऐसे उम्मीदवार को, निर्वाचन क्षेत्र में अन्य सभी उम्मीदवारों को छोड़कर, उस पार्टी के लिए पहले आरक्षित प्रतीक आवंटित किया जा सकता है जब वह एक मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय या राज्य दल

था, इसके बावजूद कि ऐसा प्रतीक ऐसे राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के लिए स्वतंत्र प्रतीकों की सूची में निर्दिष्ट नहीं है। निम्नलिखित शर्तों में से प्रत्येक को पूरा करने पर।

23. अन्य प्रावधान के आलोक में उक्त आदेश के पैरा 10 ए की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः-

> *"**28.** यह न्यायालय फिलिप्स इंडिया लिमिटेड बनाम.श्रम न्यायालय [(1985) 3 एस. सी. सी 103:1985 एस. सी. सी. (एल. एंड. एस.) 594] को पैरा 15 में निम्नानुसार देखा गया हैः(एस. सी. सी. पी. 112)*
>
> *"15. वैधानिक निर्माण का कोई भी सिद्धांत इससे अधिक दृढ़ता से स्थापित नहीं है कि क़ानून को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए।यह निर्माण का एक सामान्य नियम है जो सभी कानूनों पर समान रूप से लागू होता है जिसे कंस्ट्रक्शन एक्स विसरिबस एक्टस के रूप में कहा जाता है।वैधानिक निर्माण का यह नियम इतना दृढ़ता से स्थापित है कि इसे विभिन्न प्रकार से 'प्राथमिक नियम'के रूप में शैलीबद्ध किया गया है (अटॉर्नी जनरल बनाम बैस्टो [(1957) 1 क्यू. बी. 514 देखें):(1957) 2 डब्ल्यूएलआर 340:(1957) 1 ए.एल.एल. ई. आर. 497]) और एक 'व्यवस्थित नियम'के रूप में (पोपटलाल शाह बनाम मद्रास राज्य देखें [(1953) 1 एस. सी. सी. 492:ए. आई. आर. 1953 एससी 274:1953 एससीआर 677])।इस सुव्यवस्थित सिद्धांत का एकमात्र मान्यता प्राप्त अपवाद यह है कि जो अपने आप में स्पष्ट और स्पष्ट है, उसके अर्थ को बदलने के लिए इसे सहायता के रूप में नहीं लिया जा सकता है।लॉर्ड कोक [**एड.** लिंकन कॉलेज मामले में,*

(1595) 76 ई. आर. 764:3 सह. प्रतिनिधि 58 बी] ने निर्धारित किया कि:'किसी कानून का सबसे स्वाभाविक और वास्तविक व्याख्या यह है कि किसी कानून के एक हिस्से का उसी कानून के दूसरे हिस्से द्वारा अर्थ लगाया जाए, क्योंकि यह निर्माताओं के अर्थ को सबसे अच्छी तरह से व्यक्त करता है। [पंजाब बेवरेजेज (पी) लिमिटेड बनाम सुरेश चंद [(1978) 2 एससीसी 144: 1978 एससीसी (एल एंड एस) 165: (1978) 3 एससीआर 370] में अनुमोदन के साथ उद्धृत।]"

इसलिए, पैरा 10-ए की व्याख्या पृथक रूप से नहीं की जा सकती है जैसा कि अपीलार्थी ने अनुरोध किया था।इसे अन्य संबंधित प्रावधानों जैसे पैरा 5,6,6-ए, 6-बी और 6-सी के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए और साथ ही प्रस्तावना पर उन वस्तुओं के संदर्भ में भी पढ़ा जाना चाहिए जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत किया है।इन सब के संयुक्त पठन से स्पष्ट रूप से यह स्थिति सामने आएगी कि पैरा 10-ए को पढ़ना और व्याख्या करनी होगी ताकि यह क़ानून के अन्य प्रावधानों को नुकसान न पहुँचाए।

***29.** पुनः भारत संघ बनाम एल्फिंस्टन एस. पी. जी. मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ। और डब्ल्यूवीजी। कंपनी लिमिटेड [(2001) 4 एस. सी. सी. 139] ने पैरा 21 में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:(एस. सी. सी. पी. 169)*

"21 ... हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय किसी क़ानून में निहित वास्तविक विधायी मंशा का पता लगाने के लिए सामग्री की जांच करने में कुछ हद तक न्यायसंगत होगा, लेकिन ऐसा

तभी किया जाएगा जब क़ानून स्वयं अस्पष्ट हो या क़ानून के किसी विशेष प्रावधान को दिया गया कोई विशेष अर्थ क़ानून को अव्यवहारिक बना दे या क़ानून को लागू करने का उद्देश्य ही विफल हो जाए। लेकिन किसी भी तरह से यह कल्पना नहीं की जा सकती कि न्यायालय क़ानून का अर्थ निकालने या क़ानून को लागू करने में विधायिका की अव्यक्त मंशा का पता लगाने के लिए प्रस्तावना में प्रयुक्त भाषा का भी विस्तार कर सकता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है..."

इन टिप्पणियों से यह स्थिति स्पष्ट होती है कि चूंकि पैरा 10-ए की भाषा अत्यंत स्पष्ट है और इसका स्पष्ट अर्थ किसी भी तरह से कोई बेतुका परिणाम नहीं लाता है, इसलिए हमें स्पष्ट अर्थ पर ही निर्भर रहना होगा जो प्रावधान की स्पष्ट भाषा से निकलने वाला एकमात्र अर्थ है। यही कारण है कि हम प्रावधान को इस तरह से पढ़ने की स्थिति में नहीं थे कि पैरा 10-ए में "छह वर्ष" शब्दों को अनदेखा कर दिया जाए।

30. एक अन्य तर्क जो काम में लाया गया वह यह था कि पैरा 8 को एक तीसरी श्रेणी को मान्यता देनी चाहिए अर्थात एक पार्टी जो एक बार मान्यता प्राप्त पार्टी थी लेकिन उसने अपनी स्थिति खो दी है ताकि वह अपने पुराने प्रतीक को हमेशा के लिए बरकरार रख सके और उस पर सही तरीके से दावा कर सके। वह पैरा यह अनिवार्य बनाता है कि एक राष्ट्रीय पार्टी द्वारा खड़ा किया गया उम्मीदवार उस पार्टी के लिए आरक्षित प्रतीक को ही चुनेगा और कोई अन्य प्रतीक

नहीं। राज्य पार्टी द्वारा चुने गए उम्मीदवार को केवल उस पार्टी को आवंटित प्रतीक ही चुनना होगा और उसे आवंटित किया जाएगा, कोई अन्य प्रतीक नहीं। पैरा 8(3) में प्रावधान है कि आरक्षित प्रतीक राष्ट्रीय पार्टी या राज्य पार्टी द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार के अलावा किसी अन्य उम्मीदवार द्वारा नहीं चुना जाएगा या आवंटित नहीं किया जाएगा, जिसके लिए ऐसा प्रतीक आरक्षित किया गया है। प्रावधान बेहद स्पष्ट है। हालांकि, डॉ. स्वामी चाहते थे कि हम एक तीसरी श्रेणी बनाएं जैसा कि पहले कहा गया है। यह संभव नहीं है। अगर दलीलों को स्वीकार किया जाता है, तो हमें कुछ ऐसा पढ़ना होगा जो प्रावधानों में नहीं है और इसमें पैरा 5, 6 और 8 के साथ-साथ विवादित पैरा 10-ए भी शामिल हैं। ऐसा करने से यह न्यायालय विधायिका के खतरनाक रास्ते पर चल पड़ेगा। हमें नहीं लगता कि ऐसा कोई रास्ता संभव है। इसलिए, हम उस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं।"

24. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सिंह ने इसके बाद ***विनुभाई मोहनलाल डोबरिया बनाम मुख्य आयकर आयुक्त एवं अन्य*** के मामले का हवाला दिया, जिसकी प्रकाशित ***2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 270*** में दी गई थी, जिसमें तर्क दिया गया कि न्यायालय किसी वैधानिक प्रावधान में कुछ भी ऐसा नहीं पढ़ सकता जो स्पष्ट और असंदिग्ध हो। कानून विधानमंडल का एक आदेश होता है। कानून में प्रयुक्त भाषा विधायी इरादे का निर्धारक कारक है। कानूनों को यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में नहीं, बल्कि वैचारिक संरचना या योजना की अपनी पूर्वकल्पित धारणाओं के आधार पर एक प्रावधान के अर्थ के पूर्व निर्धारण के खतरे से बचने के लिए समझा जाना चाहिए, जिसमें व्याख्या की जाने वाली व्यवस्था कुछ हद तक उपयुक्त है।वे व्याख्या के भेष में

विधायी कार्य को हड़पने के हकदार नहीं हैं। किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है और इसे कानून नहीं बना सकता है।

25. उन्होंने विशेष रूप से ***डी. आर. वेंकटचलम बनाम डिप्टी परिवहन आयुक्त, (1977) 2 एस. सी. सी. 273*** में प्रकाशित किया गया, जो कहता है इसके नीचेः

> *"16. निर्माण के दो सिद्धांत-एक केसस ओमिसस से संबंधित और दूसरा क़ानून को समग्र रूप से पढ़ने के संबंध में-अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं।पहले सिद्धांत के तहत ऐसे मामले को छोड़कर अदालत द्वारा केसस ओमिसस की आपूर्ति नहीं की जा सकती है। जिसमें स्पष्ट आवश्यकता और जब इसके लिए, कारण क़ानून के चारों कोनों में ही पाया जाता है, लेकिन साथ ही एक मामले में चूक का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और उस उद्देश्य के लिए एक क़ानून या धारा के सभी हिस्सों का एक साथ अर्थ लगाया जाना चाहिए और एक धारा के प्रत्येक खंड का अर्थ संदर्भ और उसके अन्य खंडों के संदर्भ में लगाया जाना चाहिए ताकि एक विशेष प्रावधान पर रखा जाने वाला निर्माण पूरे क़ानून का सुसंगत अधिनियमन करे।यह और भी अधिक होगा यदि किसी विशेष खंड के शाब्दिक निर्माण से स्पष्ट रूप से बेतुके या विसंगत परिणाम सामने आते हैं जो विधानमंडल द्वारा अभिप्रेत नहीं हो सकते थे।'आर्टेमिउ बनाम प्रोकोपियस में डैनकवर्ट्स एल. जे. ने कहा, 'एक अनुचित परिणाम देने का इरादा', 'किसी क़ानून के लिए आरोपित नहीं किया जाना है यदि कोई अन्य निर्माण उपलब्ध है'।जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू करना 'कानून के स्पष्ट इरादे को विफल कर देगा और पूरी तरह से*

अनुचित परिणाम देगा, हमें'शब्दों के साथ कुछ हिंसा करनी चाहिए 'और इसलिए उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना चाहिए और एक तर्कसंगत निर्माण करना चाहिए।(ल्यूक बनाम आई.आर.सी.25 में लॉर्ड रीड के अनुसार) जहां ए.सी. पृष्ठ 577 पर उन्होंने यह भी कहा: यह कोई नई समस्या नहीं है, हालांकि हमारे प्रारूपण का मानक ऐसा है कि यह शायद ही कभी सामने आता है"

26. ***कुन्हयमद और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य*** 2000 में 6 एस. सी. सी. 359, के मामले का उल्लेख करते हुए, श्री सिंह ने विलय के सिद्धांत पर तर्क दिया है।हालाँकि, इस न्यायालय को तत्काल मामले में मुद्दों का निपटारा करते समय विलय के सिद्धांत के सामान्य कानून को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं मिलती है। इसलिए, यह न्यायालय इस संबंध में श्री सिंह द्वारा की गई दलीलों पर विचार करने से बचता है।

27. निर्णय में निर्धारित इसी तरह का सिद्धांत ***मनीषा निमेश मेहता बनाम निदेशक मंडल, (2024) 9 एस. सी. सी. 573*** में प्रकाशित , तत्काल मामले में भी लागू नहीं है।

28. श्री सिंह ने इसके बाद ***प्रिया इंदौरिया बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य*** में दिए गए निर्णय का उल्लेख किया, जिसकी प्रकाशित ***(2024) 4 एससीसी 749*** में दी गई। इस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के बाहर किए गए अपराध के लिए अतिरिक्त क्षेत्रीय पारगमन या अंतरिम अग्रिम जमानत देने की अनुमति है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रिया इंदौरिया (उपरोक्त) में माना है कि यदि कोई व्यक्ति किसी एक राज्य में अपराध करता है और एफआईआर उस क्षेत्राधिकार में दर्ज

की जाती है जहां अपराध किया गया था, लेकिन आरोपी दूसरे राज्य में रहता है, तो वह दूसरे राज्य की अदालत में जाकर सीमित अवधि की ट्रांजिट अग्रिम जमानत मांग सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त उस राज्य के सक्षम न्यायालय से संपर्क कर सकता है जहां वह रह रहा है या एक वैध उद्देश्य के लिए जा रहा है और सीमित पारगमन अग्रिम जमानत की राहत प्राप्त कर सकता है, हालांकि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्राथमिकी उस जिले या राज्य के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में दायर नहीं की जाती है जिसमें अभियुक्त रहता है, या मौजूद है।तत्काल रिट याचिका में इस मुद्दे को नहीं उठाया गया है।

29. उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय की सीमित अवधि के लिए अतिरिक्त क्षेत्रीय पारगमन अग्रिम जमानत देने की शक्ति और अधिकार इस रिट याचिका का विषय नहीं है। इसलिए, इस न्यायालय के सुविचारित दृष्टिकोण में, प्रिया इंदौरिया (उपरोक्त) में निर्धारित अनुपात भी तत्काल मामले में लागू नहीं होता है।

30. श्री सिंह इसके बाद ***गौतम नवलखा बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी, (2022) 13 एस. सी. सी. 542*** में प्रकशित पैराग्राफ 102 का उल्लेख करते हैं। ।उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 102 में धारा 167 की योजना को निम्नलिखित शब्दों में समझाया गया हैः.

> *"102. एक योजना है जो एक आरोपी की नजरबंदी के संबंध में संहिता द्वारा उजागर की गई है।प्रारंभिक बिंदु बिना वारंट के एक पुलिस अधिकारी द्वारा संज्ञेय अपराध के संबंध में व्यक्ति की गिरफ्तारी और हिरासत प्रतीत होता है।वह उसे हिरासत में ले सकता है और जाँच के दौरान उससे पूछताछ कर सकता है। हालाँकि, अधिकारी गिरफ्तारी के*

स्थान से उस स्थान तक की यात्रा के लिए लिए गए समय को छोड़कर 24 घंटे से अधिक समय तक अभियुक्त को हिरासत में नहीं रख सकता है जहाँ मजिस्ट्रेट मामले की सुनवाई करने के लिए सक्षम है।यदि वह आरोपी को पेश नहीं कर सकता है और जांच अधूरी है, तो अधिकारी गिरफ्तार व्यक्ति को निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने के लिए कर्तव्यबद्ध है।निकटतम मजिस्ट्रेट के पास अधिकार क्षेत्र हो भी सकता है और नहीं भी।वह रिमांड के अनुरोध के आधार पर गिरफ्तार व्यक्ति को निरंतर हिरासत में रखने का आदेश दे सकता है। वह काफी हद तक केस डायरी में प्रविष्टियों पर और इस तरह के रिमांड की आवश्यकता से संतुष्ट होने पर भरोसा करता था जो कारणों से प्रकट होना चाहिए। मजिस्ट्रेट पहले 15 दिनों (यू. ए. पी. ए. के तहत मामलों में, पहले 30 दिनों) के दौरान पुलिस हिरासत का आदेश दे सकता है।ऐसी अवधि के बाद, मजिस्ट्रेट हिरासत का निर्देश दे सकता है जिसे न्यायिक हिरासत या ऐसी अन्य हिरासत के रूप में वर्णित किया गया है जिसे वह उचित समझे।इसमें कोई संदेह नहीं है कि मजिस्ट्रेट पहले 15 दिनों के दौरान पुलिस हिरासत को पूरी तरह से अस्वीकार कर सकता है।वह पहले 15 दिनों के दौरान एक बार में नहीं बल्कि किश्तों में पुलिस हिरासत दे सकता है।मजिस्ट्रेट के लिए यह भी खुला है कि वह गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर रिहा करे।"

31. उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 147 में इस प्रकार कहा गया हैः.

"147. कानून की योजना (सी.आर.पी.सी.) यह है कि जब किसी व्यक्ति को संज्ञेय अपराध के संबंध में वारंट के बिना गिरफ्तार किया

जाता है, तो उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर जांच पूरी होने की उम्मीद है।यदि जांच पूरी नहीं हुई है, जैसा कि आमतौर पर होता है, तो आरोपी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए जो गिरफ्तारी के स्थान से निकटतम हो, भले ही उसके पास अधिकार क्षेत्र हो या न हो। अधिकारी द्वारा रखी गई केस डायरी में प्रविष्टियों के आधार पर मजिस्ट्रेट से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपना विवेक लगाएगा और यह तय करेगा कि आरोपी को रिमांड पर लिया जाना है या नहीं।यदि पुलिस पुलिस अभिरक्षा के लिए अनुरोध करती है जिसे स्वीकार कर लिया जाता है तो एक आदेश पारित किया जाना चाहिए और धारा 167 (3) के तहत कारण दर्ज किए जाने चाहिए।प्रभावी जाँच के लिए उचित मामलों में पुलिस हिरासत एक महत्वपूर्ण साधन है।इसके कई उपयोग हैं।इसमें परिस्थितियों के संदर्भ में अभियुक्त से पूछताछ करना और यदि संभव हो तो ऐसे बयान प्राप्त करना शामिल है जो भविष्य के अभियोजन में प्रासंगिक हों। कुछ मामलों में अभिरक्षा पूछताछ स्पष्ट रूप से अभियोजन और इसलिए अदालतों को एक पूरी तस्वीर देने की सख्त आवश्यकता है। अपीलार्थी का यह तर्क कि केवल न्यायिक अभिरक्षा का आदेश देना मजिस्ट्रेट के लिए हमेशा खुला है और केवल 90 दिनों की न्यायिक अभिरक्षा के साथ भी, डिफ़ॉल्ट जमानत के लिए एक आवेदन विवादित नहीं हो सकता है। अभिरक्षा की प्रकृति जो भी हो, जब तक कि यह धारा 167 की चार दीवारों के भीतर आती है, यदि अपेक्षित दिनों की अवधि पुलिस/न्यायिक हिरासत/पुलिस और न्यायिक हिरासत में बिताई जाती है तो यह पर्याप्त है।"

32. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि रिमांड का विवादित आदेश इस कारण के बारे में बिल्कुल मौन है कि आरोपी को डी. ओ. ई. की हिरासत में क्यों भेज दिया गया था। विवादित आदेश में यह भी नहीं बताया गया है कि मामले की जांच के दौरान याचिकाकर्ता से किस आधार पर हिरासत में पूछताछ आवश्यक थी। इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के साथ पठित बी.एन.एस.एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) की धारा 187 के प्रावधानों के तहत विवादित आदेश कानून में गलत है।

33. श्री सिंह इसके बाद उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का उल्लेख करते हैं। ***उत्तरप्रदेश राज्य और अन्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड और अन्य*** *"सब साइलेन्टियो"* और *"पर इनक्यूरिया"* सिद्धांत पर एक तर्क को आगे बढ़ाने के लिए ***(1991) 4 एस. सी. सी. 139*** में प्रकाशित किया गया। दोनों सिद्धांत उच्च न्यायालय या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिए गए निर्णय के संबंध में लागू होते हैं।

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि ऐसा निर्णय जो स्पष्ट रूप से व्यक्त न हो, और कारणों पर आधारित नहीं है और न ही यह मुद्दे पर विचार करने पर आगे बढ़ता है, उसे बाध्यकारी प्रभाव घोषित करने वाली कानून नहीं माना जा सकता है जैसा कि अनुच्छेद 141 द्वारा विचार किया गया है।एकरूपता और निरंतरता न्यायिक अनुशासन के मूल केन्द्र हैं। लेकिन जो बिना किसी अवसर के निर्णय में बच जाता है वह अनुपात निर्णय नहीं है।बिना किसी विचार के या बिना किसी कारण के पहले की गई किसी भी घोषणा या निष्कर्ष को कानून की घोषणा या सामान्य प्रकृति का अधिकार नहीं माना जा सकता है जो एक उदाहरण के रूप में बाध्यकारी है।पूर्ववर्ती नियम का अपवाद उप-मौन का नियम है।एक निर्णय उप-मौन पारित करता है,

तकनीकी अर्थ में जो उस वाक्यांश से जुड़ा हुआ है, जब निर्णय में शामिल कानून के विशेष बिंदु को न्यायालय द्वारा महसूस नहीं किया जाता है या उसके विवेक में प्रस्तुत नहीं किया जाता है।

35. यह मुद्दा तत्काल रिट याचिका पर निर्णय लेने के उद्देश्य से भी प्रासंगिक नहीं है।

36. श्री सिंह ने दलील दी है कि अनुच्छेद 22(2) में प्रयुक्त शब्द "निकटतम मजिस्ट्रेट" और बीएनएसएस के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या इस बात को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए कि इस पर की गई व्याख्या न केवल संदर्भ के प्रतिकूल होनी चाहिए, बल्कि ऐसी भी होनी चाहिए जो अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो। ऐसा निर्माण जो अधिनियम के उद्देश्य को विफल करता हो या विफल करने की संभावना रखता हो, उसे अनदेखा किया जाना चाहिए और स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

37. अपने तर्क के समर्थन में, वह संदर्भित करता है ***राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड और अन्य का मामला बनाम कृपाल सिंह, (2014) 5 एस.सी.सी. 189*** में प्रकाशित किए गए।

38. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता पंकज बंसल के मामले का उल्लेख करते हैं। ***पंकज बंसल बनाम भारत संघ और अन्य, (2024) 7 एस. सी. सी. 576*** में प्रकाशित किया गया।

39. पंकज बंसल (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारणीय एकमात्र मुद्दा यह था कि क्या पीएमएलए की धारा 19 के तहत अपीलकर्ता की गिरफ्तारी वैध और विधिसम्मत थी, और क्या विद्वान अवकाश न्यायाधीश/अतिरिक्त

सत्र न्यायाधीश, पंचकूला द्वारा पारित रिमांड के आदेश उचित थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि केवल रिमांड का आदेश पारित करना अपीलकर्ताओं की गिरफ्तारी को वैध बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, यदि ऐसी गिरफ्तारियां पीएमएलए की धारा 19 की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं हैं। हालांकि ईडी द्वारा निर्णयों का हवाला दिया गया था जिसमें कहा गया था कि सक्षम न्यायालय द्वारा रिमांड आदेश पारित करने के बाद गिरफ्तारी की वैधता महत्वहीन हो जाएगी, उन मामलों में मुख्य रूप से अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा रिमांड का आदेश पारित किए जाने के बाद बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट मांगे जाने के मुद्दे से निपटा गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा माना गया था कि पंकज बंसल (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उक्त अनुपात की कोई भूमिका नहीं है।

40. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ क्रमांक में उपर्युक्त निर्णय की धारा 21 में निम्न प्रकार से कहा गया है:-

> *"21. धारा 19(3) पीएमएलए के अनुसार और उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून के अनुसार, धारा 167 दं.प्र.सं. का अनुपालन आवश्यक रूप से तब किया जाना चाहिए जब धारा 19 पीएमएलए के तहत गिरफ्तारी की जाती है। धारा 19(1) पीएमएलए के तहत ईडी द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को रिमांड पर लेने की धारा 167 दं.प्र.सं. के तहत की गई कार्रवाई को देखते हुए न्यायालय का कर्तव्य है कि वह सत्यापित करे और सुनिश्चित करे कि धारा 19 में दी गई शर्तें पूरी तरह से पूरी की गई हैं और गिरफ्तारी वैध और कानूनी है। यदि न्यायालय इस कर्तव्य का सही ईमानदारी से और उचित परिप्रेक्ष्य में निर्वहन करने में विफल रहता है, जैसा कि पहले बताया गया है,*

तो रिमांड का आदेश उस आधार पर विफल हो जाएगा और यह किसी भी तरह से धारा 19 पीएमएलए के तहत की गई अवैध गिरफ्तारी को वैध नहीं ठहरा सकता है।"

41. श्री सिंह इसके बाद मनी लॉन्ड्रिंग अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करते हैं जैसे:- "धारा 2(एनए) में परिभाषित जांच जिसमें इस पीएमएलए के तहत निदेशक या केंद्र सरकार द्वारा इस अधिनियम के तहत साक्ष्य एकत्र करने के लिए अधिकृत प्राधिकरण द्वारा की गई सभी कार्यवाही शामिल है।

42. पीएमएलए की धारा 16 सर्वेक्षण की शक्ति से संबंधित है। पीएमएलए की धारा 16 नीचे उद्धृत की गई है:-

*"**16. सर्वेक्षण की शक्ति-**(1) इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान में निहित किसी भी बात के बावजूद, जहां किसी अधिकारी के पास, उसके कब्जे में मौजूद सामग्री के आधार पर, यह विश्वास करने का कारण है (ऐसे विश्वास के कारणों को लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए) कि धारा 3 के तहत कोई अपराध किया गया है, वह किसी भी स्थान में प्रवेश कर सकता है-*

(i) उसे सौंपे गए क्षेत्र की सीमाओं के भीतर; या

(ii) जिसके संबंध में वह इस धारा के प्रयोजनों के लिए ऐसे अन्य प्राधिकारी द्वारा प्राधिकृत है, जिसे वह क्षेत्र सौंपा गया है जिसके भीतर ऐसा स्थान स्थित है,

जिस पर ऐसे अपराध का गठन करने वाला कोई कार्य किया जाता है, और वह किसी स्वामी, कर्मचारी या किसी अन्य व्यक्ति से, जो उस समय और स्थान पर किसी भी तरह से ऐसे कार्य में उपस्थित हो या उसमें सहायता कर रहा हो, यह अपेक्षा कर सकता है कि,—

(i) उसे ऐसे अभिलेखों का निरीक्षण करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे जिनकी उसे आवश्यकता हो और जो ऐसे स्थान पर उपलब्ध हों;

(ii) उसे अपराध की आय या अपराध की आय से संबंधित किसी भी लेन-देन की जांच या सत्यापन करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे जो उसमें पाया जा सकता है; और

(iii) किसी भी मामले के बारे में ऐसी जानकारी प्रदान करे जिसकी उसे आवश्यकता हो जो इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही के लिए उपयोगी या प्रासंगिक हो सकती है।

स्पष्टीकरण-इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, वह स्थान, जहां कोई ऐसा कार्य किया जाता है, जो अपराध का गठन करता है, में कोई अन्य स्थान भी शामिल होगा, चाहे वहां कोई गतिविधि की जाती हो या नहीं, जिसमें ऐसी गतिविधि करने वाला व्यक्ति यह बताता है कि ऐसे कार्य से संबंधित उसके अभिलेख या उसकी संपत्ति का कोई भाग रखा गया है।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्राधिकारी सर्वेक्षण पूरा होने के तुरंत बाद उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी स्थान में प्रवेश करने के बाद, उस उपधारा में निर्दिष्ट अपने कब्जे में सामग्री के साथ इस प्रकार दर्ज किए गए कारणों की एक प्रति, एक सीलबंद लिफाफे में, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को, विहित तरीके से भेजेगा और ऐसा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ऐसे कारणों और सामग्री को ऐसी अवधि के लिए रखेगा, जैसी विहित की जा सकती है।

(3) इस धारा के अधीन कार्य करने वाला प्राधिकारी-

(i) अपने द्वारा निरीक्षण किए गए अभिलेखों पर पहचान चिह्न लगा सकता है और उनसे उद्धरण या प्रतिलिपियाँ बना सकता है या बनवा सकता है,

(ii) अपने द्वारा जाँची या सत्यापित किसी संपत्ति की सूची बना सकता है, और

(iii) उस स्थान पर उपस्थित किसी व्यक्ति का कथन दर्ज कर सकता है जो इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही के लिए उपयोगी या सुसंगत हो सकता है।"

43. धारा 17 उक्त अधिनियम के तहत तलाशी और जब्ती से संबंधित अगला महत्वपूर्ण प्रावधान है। । उक्त प्रावधान इस प्रकार है:-

*"**17. तलाशी और जब्ती**-(1) जहां 1 [निदेशक या कोई अन्य अधिकारी जो इस धारा के प्रयोजनों के लिए उसके द्वारा प्राधिकृत उपनिदेशक के पद से नीचे का न हो], उसके पास मौजूद सूचना के आधार पर यह विश्वास करने का कारण है (ऐसे विश्वास का कारण लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए) कि किसी व्यक्ति ने-*

(i) कोई ऐसा कार्य किया है जो धन-शोधन का गठन करता है, या

(ii) धन-शोधन में शामिल किसी अपराध की आय के कब्जे में है, या

(iii) धन-शोधन से संबंधित किसी अभिलेख के कब्जे में है,1 [या] 1

[(iv) अपराध से संबंधित किसी संपत्ति के कब्जे में है,] तो, इस संबंध में बनाए गए नियमों के अधीन रहते हुए, वह अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी को यह प्राधिकृत कर सकता है कि-

(क) किसी भवन, स्थान, जलयान, वाहन या वायुयान में प्रवेश करे और उसकी तलाशी ले, जहां उसे संदेह करने का कारण हो कि ऐसे अभिलेख या अपराध की आय रखा हुआ;

(ख) किसी भी दरवाजे, बक्से, लॉकर, तिजोरी, अलमारी या अन्य पात्र का ताला तोड़ना, धारा (क) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, जहां उसकी चाबियां उपलब्ध नहीं हैं;

(ग) ऐसी तलाशी के परिणामस्वरूप पाए गए किसी अभिलेख या संपत्ति को जब्त करना;

(घ) ऐसे अभिलेख या संपत्ति पर पहचान के निशान लगाना, यदि आवश्यक हो या] उससे उद्धरण या प्रतियां बनाना या बनवाना;

(ङ) ऐसे अभिलेख या संपत्ति का नोट या सूची बनाना;

(च) किसी भी व्यक्ति की शपथ पर जांच करना, जो किसी अभिलेख या संपत्ति पर कब्जा या नियंत्रण में पाया जाता है, इस अधिनियम के तहत किसी भी जांच के प्रयोजनों के लिए सुसंगत सभी मामलों के संबंध में:

3 [(1ए) जहां ऐसे अभिलेख या संपत्ति को जब्त करना व्यवहार्य नहीं है, उप-धारा (1) के तहत अधिकृत अधिकारी ऐसी संपत्ति को फ्रीज करने का आदेश दे सकता है, जिसके बाद संपत्ति को स्थानांतरित नहीं किया जाएगा या अन्यथा निपटाया नहीं जाएगा, सिवाय ऐसे आदेश देने वाले अधिकारी की पूर्व अनुमति के, और ऐसे आदेश की एक प्रति संबंधित व्यक्ति को दी जाएगी:

बशर्ते कि यदि धारा 8 की उपधारा (5) या उपधारा (7) या धारा 58बी या धारा 60 की उपधारा (2ए) के अधीन जब्ती से पूर्व किसी भी समय, किसी जमी हुई संपत्ति को जब्त करना व्यावहारिक हो जाता है, तो उपधारा (1) के अधीन प्राधिकृत अधिकारी ऐसी संपत्ति को जब्त कर सकता है।]

(2) उपधारा (1) के अधीन प्राधिकृत अधिकारी, तलाशी और जब्ती के तुरंत बाद [या फ्रीजिंग आदेश जारी करने पर], उस उपधारा में निर्दिष्ट अपने कब्जे में सामग्री के साथ इस प्रकार दर्ज किए गए कारणों की एक प्रति, एक सीलबंद लिफाफे में न्यायनिर्णायक

प्राधिकारी को, निर्धारित तरीके से भेजेगा और ऐसा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ऐसे कारणों और सामग्री को निर्धारित अवधि तक जब्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

(3) जहां कोई प्राधिकारी, धारा 16 के अधीन सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त सूचना के आधार पर संतुष्ट हो जाता है कि कोई साक्ष्य छिपाया जाएगा या उसके साथ छेड़छाड़ की संभावना है, तो वह लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से उस भवन या स्थान में प्रवेश कर सकता है और तलाशी ले सकता है जहां ऐसा साक्ष्य स्थित है और उस साक्ष्य को जब्त कर सकता है:

बशर्ते कि इस उपधारा के अधीन तलाशी के लिए उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी प्राधिकरण की आवश्यकता नहीं होगी।

4 [(4) उपधारा (1) के अधीन किसी अभिलेख या संपत्ति को जब्त करने वाला या उपधारा (1ए) के अधीन किसी अभिलेख या संपत्ति को फ्रीज करने वाला प्राधिकारी, ऐसी जब्ती या फ्रीजिंग से तीस दिन की अवधि के भीतर, जैसा भी मामला हो, न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष उपधारा (1) के अधीन जब्त किए गए ऐसे अभिलेख या संपत्ति को रखने या उपधारा (1ए) के अधीन फ्रीजिंग के आदेश को जारी रखने का अनुरोध करते हुए आवेदन दायर करेगा।"

44. इसके बाद पीएमएलए की धारा 19 के तहत अधिकृत अधिकारी को अपराधी को गिरफ्तार करने का अधिकार मिलता है। धारा 19 का प्रावधान नीचे उद्धृत है:-

"19. गिरफ्तार करने की शक्ति।-(1) यदि निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक या केंद्र सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कोई अन्य अधिकारी अपने कब्जे में मौजूद सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण रखता है (ऐसे विश्वास का कारण लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए) कि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है, तो

वह ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है और यथाशीघ्र उसे ऐसी गिरफ्तारी के आधारों की जानकारी देगा।

(2) निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक या कोई अन्य अधिकारी उपधारा (1) के तहत ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरंत बाद उस उपधारा में निर्दिष्ट सामग्री के साथ आदेश की एक प्रति सीलबंद लिफाफे में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को भेजेगा, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है और ऐसा न्यायनिर्णायक प्राधिकारी ऐसे आदेश और सामग्री को ऐसी अवधि के लिए रखेगा, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

(3) उप-धारा (1) के अंतर्गत गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति को चौबीस घंटे के भीतर, अधिकारिता रखने वाले 1 [विशेष न्यायालय या] न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट के पास ले जाया जाएगा: बशर्ते कि चौबीस घंटे की अवधि में गिरफ्तारी के स्थान से 2 [विशेष न्यायालय या] मजिस्ट्रेट न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय शामिल नहीं होगा।"

45. इन प्रावधानों का हवाला देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि बीएनएसएस के विपरीत, किसी अभियुक्त को केवल संज्ञेय अपराध में उसकी संलिप्तता के विश्वसनीय संदेह के आधार पर गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। धारा 19 निदेशक, उप निदेशक, सहायक निदेशक या केंद्र सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी अन्य व्यक्ति पर किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने का अनिवार्य दायित्व बनाती है, जिसके पास अपने पास मौजूद सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण (ऐसे विश्वास करने का कारण लिखित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए) है कि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। संबंधित अधिकारी का यह भी बाध्यकारी कर्तव्य है कि वह उसे ऐसी गिरफ्तारी के आधारों के बारे में सूचित करे। इसलिए किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने

से पहले धारा 19 में दो पूर्व शर्तें निहित हैं। अधिकृत अधिकारी के पास अपने पास मौजूद सामग्री के आधार पर यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि वह व्यक्ति किसी अपराध का दोषी है। इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय है। दूसरे, ऐसा विश्वास करने का कारण लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा और तीसरा, गिरफ्तार व्यक्ति को तुरंत गिरफ्तारी के आधारों के बारे में सूचित किया जाएगा।

46. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिन्होंने याचिकाकर्ता को डी.ओ.ई. की हिरासत में भेजा था, इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि पीएमएलए की धारा 19 की मूलभूत आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया था या नहीं।

47. पीएमएलए की धारा 46 में कहा गया है कि दं.प्र.सं. के प्रावधान, अब बी.एन.एस.एस, विशेष न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर लागू होंगे, और इस उद्देश्य के लिए एक विशेष न्यायालय को सत्र न्यायालय माना जाएगा। इस प्रकार, विद्वान मजिस्ट्रेट को रिमांड का विवादित आदेश पारित करते समय, पीएमएलए की धारा 19 की आवश्यक आवश्यकताओं के प्रति सजग होना।

48. उन्होंने पीएमएलए की धारा 65 का भी उल्लेख किया है, जिसमें दं.प्र.सं./बीएनएसएस के प्रावधानों को लागू करने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि वे प्रावधानों के साथ असंगत नहीं हैं, जो इस अधिनियम के तहत गिरफ्तारी, तलाशी और जब्ती, कुर्की, जब्ती, जांच, अभियोजन और पीएमएलए के तहत अन्य सभी कार्यवाही के लिए हैं।

49. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त सभी निर्णयों और कानून के विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, श्री सिंह ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी उस इलाके के निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश न करके संवैधानिक सुरक्षा

का पालन करने में विफल रहे, जहां उसे गिरफ्तार किया गया था। इसलिए, ईडी की पूरी कार्रवाई और उसके बाद रिमांड का आदेश विद्वान मजिस्ट्रेट ने संविधान के अनुच्छेद 22(2) का उल्लंघन किया है और इस पर इस न्यायालय द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है।

50. अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया है कि ईडी द्वारा बनाए गए मामले के अनुसार, याचिकाकर्ता के घर पर छापा मारा गया था, जो सीएफ-374 साल्ट लेक सिटी, सेक्टर-1, कोलकाता-700064 में स्थित है और आरोपी को 25 जनवरी 2025 को गिरफ्तार किया गया था। उसी दिन, लगभग 08.35 बजे डीओई ने आरोपी को पटना लाने के लिए फ्लाइट टिकट खरीदा था। इसलिए, तलाशी और जब्ती पूरी किए बिना और विश्वास करने का कारण बनाए बिना, जैसा कि धारा 19 में कहा गया है पीएमएलए के तहत, डीओई ने उसे गिरफ्तार करने का फैसला किया, जो न केवल अवैध है बल्कि डीओई द्वारा उठाया गया एक बेतुका और पूर्व-नियोजित कदम है। उन्होंने 25 जनवरी, 2025 की सुबह याचिकाकर्ता के घर का दौरा किया, केवल अपराध में उसकी भागीदारी के बारे में कोई राय/व्यक्तिपरक संतुष्टि बनाए बिना उसे गिरफ्तार करने के लिए, यह मानने का कारण बनाकर कि आरोपी पीएमएलए के तहत अपराध करने का दोषी है।

51. निष्कर्ष निकालने के लिए, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील, ***प्रवर्तन निदेशालय बनाम शुभम शर्मा*** के फैसले का भी उल्लेख करते हैं, जो 2025 ***एच.सी.सी. ऑनलाइन एच.सी. 240*** में प्रकाशित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि 5 मार्च, 2022 को सुबह 11 बजे से 24 घंटे के भीतर निकटतम विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रतिवादी/आरोपी को पेश न करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (2) का उल्लंघन है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को निर्धारित समय के भीतर

निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए बिना हिरासत में रखना पूरी तरह से अवैध है और यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 के खंड (2) के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। इसलिए, हिरासत में 24 घंटे पूरे होने पर उसकी गिरफ्तारी अमान्य हो जाती है। चूंकि यह संविधान के अनुच्छेद 22 (2) का उल्लंघन है।

52. डीओई की ओर से विद्वान विशेष लोक अभियोजन श्री ज़ोहेब हुसैन ने सबसे पहले अनुच्छेद 15ए, जो अब अनुच्छेद 22 है, के परिचय के संबंध में संवैधानिक बहस के प्रासंगिक हिस्से को संदर्भित करता है, और डॉ. बी.आर. अंबेडकर के उत्तर का निम्नलिखित अंश इस न्यायालय के समक्ष बहुत प्रासंगिकता और आदेश के साथ रखा गया है। संबंधित पैराग्राफ इस प्रकार है:-

> *"अब, महोदय, मैं खंड (2) पर आता हूँ। मुख्य बिंदु वह है जो मेरे मित्र श्री पाटस्कर ने उठाया है। जहाँ तक मैं समझ पाया, वे "मजिस्ट्रेट" शब्द के स्थान पर "प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट" शब्द रखना चाहते थे। खैर, दो कारणों से मुझे उनके द्वारा सुझाए गए शब्दों को स्वीकार करने में कुछ कठिनाई हो रही है। हमने खंड (2) में बहुत महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है, अर्थात् "निकटतम मजिस्ट्रेट" और मुझे लगा कि यह बहुत आवश्यक था क्योंकि अन्यथा यह पुलिस अधिकारी को इस आधार पर किसी व्यक्ति को अधिक समय तक हिरासत में रखने में सक्षम बनाएगा कि वह जिस मजिस्ट्रेट के पास अभियुक्त को ले जाना चाहता है, या वह मजिस्ट्रेट जो अंततः अभियुक्त पर मुकदमा चलाने का हकदार होगा, वह उस समय रह रहा था। दूरी पर था और इसलिए उसे लंबे समय तक हिरासत में रखने का कोई उचित आधार नहीं था। इस तरह के किसी भी तर्क को दूर करने के*

लिए, हमने "निकटतम मजिस्ट्रेट" शब्दों का इस्तेमाल किया था। अब मान लीजिए, हमें "निकटतम प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट" शब्द जोड़ना था: स्थिति बहुत कठिन होगी। "निकटतम मजिस्ट्रेट" हो सकता है, जिससे पुलिस को अभियुक्त के हित में संपर्क करना चाहिए ताकि उसके मामले पर न्यायिक रूप से विचार किया जा सके। लेकिन वह प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट नहीं हो सकता। इसलिए, हमें वास्तव में एक विकल्प चुनना होगा: क्या हम अभियुक्त को उसके मामले का फैसला करने और निकटवर्ती मजिस्ट्रेट द्वारा जांच करने का जल्द से जल्द अवसर देंगे, या हमें प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की तलाश करनी चाहिए। मुझे लगता है कि "निकटतम मजिस्ट्रेट" मजिस्ट्रेट" अभियुक्त की स्वतंत्रता के हित में सबसे अच्छा प्रावधान है। मैं अपने मित्र श्री पाटस्कर को यह भी बताना चाहूंगा कि यदि मैं उनके संशोधन - "निकटतम प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट" को स्वीकार भी कर लूं तो भी तत्कालीन सरकार के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके किसी भी मजिस्ट्रेट को प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की शक्तियां प्रदान करना पूरी तरह संभव होगा, जिसे वे चाहें और इस तरह अभियुक्त को धोखा दे सकें। इसलिए मैं नहीं समझता कि उनका संशोधन न तो वांछनीय है और न ही आवश्यक है और मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

53. डॉ. अंबेडकर ने विशेष रूप से तर्क दिया है कि प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 15 ए के खंड (2) में बहुत महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया है, अर्थात निकटतम मजिस्ट्रेट। इसका कारण यह है कि यदि इसे संवैधानिक प्रावधान द्वारा सुरक्षित नहीं किया गया होता, तो यह पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति को इस आधार पर अधिक समय तक हिरासत में रखने में सक्षम बनाता कि जिस मजिस्ट्रेट के

पास वह आरोपी को ले जाना चाहता है या मजिस्ट्रेट जो अंततः आरोपी पर मुकदमा चलाने का हकदार होगा, वह बहुत दूर रहता है और इसलिए उसके पास उसे अधिक समय तक हिरासत में रखने का कोई उचित आधार नहीं है। इसलिए, संविधान के जनक के अनुसार, "निकटतम मजिस्ट्रेट" आरोपी की स्वतंत्रता के हित में सबसे अच्छा प्रावधान है।

54. श्री हुसैन ने आग्रह किया है कि अब यह एक सामान्य कानून बन गया है कि निकटतम मजिस्ट्रेट वह मजिस्ट्रेट हो सकता है जिसके पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार नहीं है, लेकिन संवैधानिक आवश्यकता यह है कि अभियुक्त को या तो उसकी गिरफ्तारी के स्थान के निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए या यदि संभव हो तो अभियुक्त से निपटने के लिए क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए। विवाद "निकटतम मजिस्ट्रेट" और "क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट" की शर्तों पर नहीं है। अभियुक्त का मौलिक और वैधानिक अधिकार 24 घंटे के भीतर पेश किए जाने के उसके अधिकार पर आधारित है। यदि न्यायिक घोषणाओं द्वारा कोई अन्य अर्थ पेश करने की कोशिश की जाती है, तो इससे गिरफ्तार करने वाली एजेंसी का 24 घंटे के भीतर अभियुक्त को पेश करने का दायित्व निरर्थक हो जाएगा।

55. ***एस.आर.चौधरी बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए, ***(2001) 7 एससीसी 126*** में रिपोर्ट किया गया, श्री हुसैन द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संविधान सभा की बहसों पर संवैधानिक प्रावधान की व्याख्या करने में सहायता के रूप में भरोसा किया जा सकता है।

56. इस संबंध में, यह न्यायालय माननीय न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर ने ***शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य*** के मामले में ***(1974) 2 एससीसी 831*** में पैराग्राफ 104 में प्रकाशित दी है, जो इस प्रकार है:-

> *"104. पोटोमैक नहीं, बल्कि टेम्स नदी यमुना के प्रवाह को उपजाऊ बनाती है, अगर हम नदी की छवि अपनाएं। इस थीसिस में हम इस न्यायालय के उदाहरणों से पुष्ट होते हैं, संविधान सभा की कार्यवाही से मजबूत होते हैं और लगभग 'रजत जयंती' अवधि के लिए शामिल अंगों के वास्तविक कामकाज से मजबूत होते हैं।"*

57. श्री हुसैन ने अब मेरा ध्यान ***विजय मंडनलाल चौधरी बनाम भारत संघ*** के पैराग्राफ संख्या 467 की ओर आकर्षित किया है, जो ***(2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 929*** में प्रकाशित किया गया है। पैराग्राफ 467 नीचे उद्धृत है:-

<u>निष्कर्ष</u>

उपरोक्त विश्लेषण के आलोक में, अब हम निम्नलिखित शब्दों में मुद्दे के मौलिक बिंदुओं पर अपने निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं: -

> *(i) इस प्रश्न पर कि क्या धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 में कुछ संशोधनों को संसद द्वारा वित्त अधिनियम के माध्यम से अधिनियमित नहीं किया जा सकता था, इस निर्णय में विचार नहीं किया गया है। रोजर मैथ्यू के मामले में इस न्यायालय की बड़ी पीठ (सात न्यायाधीशों) के निर्णय के साथ या उसके बाद इस पर विचार किया जाना बाकी है।*
>
> *(ii) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (एनए) में होने वाली अभिव्यक्ति "कार्यवाही" प्रासंगिक है और इसे प्रवर्तन निदेशालय, न्याय निर्णय प्राधिकरण और विशेष न्यायालय के अधिकारियों द्वारा*

की जाने वाली जांच प्रक्रिया को शामिल करने के लिए व्यापक अर्थ दिया जाना आवश्यक है।

(iii) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (एनए) में अभिव्यक्ति "जांच" अधिनियम के तहत अपराध से संबंधित जांच के मामले तक ही सीमित नहीं है और अधिनियम के तहत अधिकारियों द्वारा की जाने वाली "जांच" के कार्य के साथ विनिमेय है।

(iv) 2002 अधिनियम की धारा 2(1) के खंड (यू) में डाला गया स्पष्टीकरण अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त संपत्ति को ट्रैक करने और उस तक पहुंचने के मुख्य प्रावधान से आगे नहीं जाता है।

(v) (क) 2002 अधिनियम की धारा 3 की पहुंच व्यापक है और अपराध की आय से निपटने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हर प्रक्रिया और गतिविधि को कवर करती है और औपचारिक अर्थव्यवस्था में दागी संपत्ति के एकीकरण के अंतिम कार्य के होने तक सीमित नहीं है। 2019 के संशोधन के माध्यम से धारा 3 में जोड़ा गया स्पष्टीकरण धारा 3 के आशय का विस्तार नहीं करता है, बल्कि केवल स्पष्टीकरणात्मक प्रकृति का है। यह "और" शब्द को "या" के रूप में पेश करने या दावा करने वाले अभिव्यक्ति से पहले स्पष्ट करता है; और एक स्पष्टीकरणात्मक संशोधन होने के नाते, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, भले ही इसे वित्त अधिनियम के माध्यम से या अन्यथा पेश किया जाए।

(ख) उपरोक्त से स्वतंत्र, हम स्पष्ट रूप से इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि धारा 3 में आने वाले "और" अभिव्यक्ति को "या" के रूप में समझा जाना चाहिए, ताकि उक्त प्रावधान को पूर्ण रूप से लागू किया जा सके ताकि किसी के द्वारा की गई "प्रत्येक" प्रक्रिया या गतिविधि को शामिल किया जा सके। संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करना या दावा करना, एक स्वतंत्र प्रक्रिया या गतिविधि होने के नाते, अपने आप में धन शोधन का अपराध होगा।

(ग) याचिकाकर्ताओं द्वारा सुझाई गई व्याख्या, कि केवल प्रश्नगत संपत्ति को बेदाग संपत्ति के रूप में पेश करने या दावा करने पर ही धारा 3 का अपराध पूरा हो जाएगा, खारिज की जाती है।

(घ) 2002 अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराध अनुसूचित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि के परिणामस्वरूप संपत्ति के अवैध लाभ पर निर्भर है। यह ऐसी संपत्ति से जुड़ी प्रक्रिया या गतिविधि से संबंधित है, जो मनी लॉन्ड्रिंग का अपराध बनाती है। 2002 अधिनियम के तहत अधिकारी किसी भी व्यक्ति पर काल्पनिक आधार पर या इस धारणा पर मुकदमा नहीं चला सकते हैं कि अनुसूचित अपराध किया गया है, जब तक कि यह अधिकार क्षेत्र वाली पुलिस के साथ पंजीकृत न हो और/या सक्षम फोरम के समक्ष आपराधिक शिकायत सहित जांच/परीक्षण लंबित न हो। यदि व्यक्ति को अनुसूचित अपराध से अंतिम रूप से मुक्त/बरी कर दिया जाता है या उसके खिलाफ आपराधिक मामला सक्षम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाता है, तो उसके खिलाफ या उसके माध्यम से अनुसूचित अपराध से जुड़ी संपत्ति होने का दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ धन शोधन का कोई अपराध नहीं हो सकता है।

(vi) 2002 अधिनियम की धारा 5 संवैधानिक रूप से वैध है। यह व्यक्ति के हितों को सुरक्षित करने के लिए एक संतुलन व्यवस्था प्रदान करता है और यह भी सुनिश्चित करता है कि अपराध की आय 2002 अधिनियम द्वारा प्रदान की गई विधि से निपटने के लिए उपलब्ध रहे। हमारे द्वारा ऊपर बताए गए प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपाय संबंधित व्यक्ति के हितों की रक्षा के लिए प्रभावी उपाय हैं।

(vii) 2002 अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (4) की वैधता को चुनौती भी इस शर्त पर खारिज की जाती है कि धारा 8 को ऊपर दिए गए अर्थ के अनुसार लागू किया जाएगा और संचालित किया जाएगा।

(viii) 2002 अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (1) के प्रावधान को हटाने की चुनौती खारिज की जाती है। धारा 17 और उसके तहत बनाए गए नियमों में कड़े सुरक्षा उपाय दिए गए हैं। इसके अलावा, 2005 के नियमों के नियम 3(2) के प्रावधान में पूर्व शर्त को इसके संशोधन के बाद धारा 17 में नहीं पढ़ा जा सकता है। केंद्र सरकार इस संबंध में उत्पन्न भ्रम को दूर करने के लिए आवश्यक सुधारात्मक कदम उठा सकती है।

(ix) 2002 अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (1) के प्रावधान को हटाने की चुनौती भी खारिज की जाती है। धारा 18 में भी इसी तरह के सुरक्षा उपाय दिए गए हैं। हमारा मानना है कि संशोधित प्रावधान मनमानी के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(x) 2002 अधिनियम की धारा 19 की संवैधानिक वैधता को चुनौती भी खारिज की जाती है। धारा 19 में कड़े सुरक्षा उपाय दिए गए हैं। यह प्रावधान मनमानी के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(xi) 2002 अधिनियम की धारा 24 का 2002 अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और उद्देश्यों के साथ उचित संबंध है और इसे स्पष्ट रूप से मनमाना या असंवैधानिक नहीं माना जा सकता है।

(xii) (क) 2002 अधिनियम की धारा 44 की उपधारा (1) के खंड (ए) में प्रावधान को प्रकृति में निर्देशात्मक माना जाना चाहिए और इस प्रावधान को इस अर्थ में भी पढ़ा जाता है कि विशेष न्यायालय मामले-दर-मामला आधार पर न्यायिक विवेक का प्रयोग कर सकता है।

(ख) हमें धारा 44 के मनमाने या असंवैधानिक होने की चुनौती में कोई दम नहीं दिखता। हालांकि, इस धारा में उल्लिखित परिस्थितियों पर संबंधित न्यायालय और संबंधित प्राधिकरण द्वारा इस निर्णय में दी गई व्याख्या के अनुसार विचार किया जाएगा।

(xiii) (क) निकेश ताराचंद शाह706 में इस न्यायालय द्वारा 2002 अधिनियम की धारा 45(1) में दो शर्तों को, जैसा कि वह प्रासंगिक समय पर थी, असंवैधानिक घोषित करने के लिए जो कारण बताए गए, वे किसी भी तरह से क़ानून की किताब से प्रावधान को नहीं मिटाते; और संसद के लिए यह खुला था कि वह इस न्यायालय द्वारा उल्लेखित दोष को ठीक करे ताकि मौजूदा रूप में उसी प्रावधान को पुनर्जीवित किया जा सके।

(ख) हम निकेश ताराचंद शाह707 में संविधान पीठ के करतार सिंह708 में दिए गए निर्णय की व्याख्या में अंतर करने वाली टिप्पणियों से सहमत नहीं हैं; तथा अन्य टिप्पणियाँ जो धन शोधन के अपराध की गंभीरता के संबंध में संसद की धारणा पर संदेह करने का संकेत देती हैं, जिसमें देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए गंभीर खतरा पैदा करना भी शामिल है।

(ग) 2002 अधिनियम की धारा 45 के रूप में प्रावधान, जैसा कि 2018 के संशोधन के बाद लागू है, उचित है और 2002 अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों और उद्देश्यों से सीधा संबंध रखता है और मनमानी या अनुचितता के दोष से ग्रस्त नहीं है।

(घ) जमानत देने की प्रार्थना के संबंध में, कार्यवाही की प्रकृति के बावजूद, 1973 संहिता की धारा 438 के तहत या यहां तक कि संवैधानिक न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने पर भी, धारा 45 के अंतर्निहित सिद्धांत और कठोरता लागू हो सकती है।

(xiv) 1973 संहिता की धारा 436ए के लाभकारी प्रावधान को 2002 अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए गिरफ्तार किए गए अभियुक्त द्वारा लागू किया जा सकता है।

(xv) (क) 2002 अधिनियम की धारा 50 द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया अपराध की आय के विरुद्ध जांच की प्रकृति की है और अभियोजन आरंभ करने के लिए शब्द के सख्त अर्थ में "जांच" नहीं

है; और 2002 अधिनियम के तहत प्राधिकरण (धारा 48 में संदर्भित), वास्तव में पुलिस अधिकारी नहीं हैं।

(ख) 2002 अधिनियम के तहत प्राधिकरणों द्वारा दर्ज किए गए बयान भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) या अनुच्छेद 21 के अंतर्गत नहीं आते हैं।

(xvi) 2002 अधिनियम की धारा 63, जो झूठी सूचना या सूचना न देने के संबंध में दंड का प्रावधान करती है, मनमानी के किसी भी दोष से ग्रस्त नहीं है।

(xvii) 2002 अधिनियम की अनुसूची में किसी विशेष अपराध को शामिल करना या बहिष्कृत करना विधायी नीति का मामला है; और किसी भी अपराध की प्रकृति या वर्ग का अनुसूची या उसके तहत किसी भी नुस्खे की वैधता पर कोई असर नहीं पड़ता है।

(xviii) (क) 2002 अधिनियम द्वारा परिकल्पित विशेष तंत्र के मद्देनजर, ईसआईआर को 1973 संहिता के तहत एफआईआर के बराबर नहीं माना जा सकता है। ईसआईआर ईडी का एक आंतरिक दस्तावेज है और यह तथ्य कि अनुसूचित अपराध के संबंध में एफआईआर दर्ज नहीं की गई है, धारा 48 में संदर्भित अधिकारियों के लिए अपराध की आय के रूप में संपत्ति की "अनंतिम कुर्की" की "सिविल कार्रवाई" शुरू करने के लिए जांच/जांच शुरू करने के रास्ते में नहीं आता है।

(ख) प्रत्येक मामले में संबंधित व्यक्ति को ईसीआईआर की एक प्रति उपलब्ध कराना अनिवार्य नहीं है, यदि ईडी गिरफ्तारी के समय ऐसी गिरफ्तारी के आधार का खुलासा कर दे तो यह पर्याप्त है।

(ग) हालांकि, जब गिरफ्तार व्यक्ति को विशेष न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, तो विशेष न्यायालय के लिए धन शोधन के अपराध के संबंध में उसे निरंतर हिरासत में रखने की आवश्यकता के मुद्दे का उत्तर देने के लिए ईडी के अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत

प्रासंगिक अभिलेखों पर गौर करना खुला है। (xix) जब ईडी मैनुअल को प्रकाशित नहीं किया जाना है, क्योंकि यह एक आंतरिक विभागीय दस्तावेज है, जो अधिकारियों (ईडी अधिकारियों) के मार्गदर्शन के लिए जारी किया जाता है, तब भी विभाग को अपनी वेबसाइट पर सूचना डालने की वांछनीयता का पता लगाना चाहिए, जो अधिनियम के तहत पदाधिकारियों के अधिकार के दायरे और उनके द्वारा अपनाए जाने वाले उपायों के साथ-साथ प्राधिकरण और विशेष न्यायालय के समक्ष संबंधित व्यक्ति के लिए उपलब्ध विकल्पों/उपायों को व्यापक रूप से रेखांकित कर सके।

(xx) याचिकाकर्ताओं द्वारा अपीलीय न्यायाधिकरण में रिक्तियों के कारण होने वाले अन्याय के बारे में गंभीर चिंता व्यक्त करना उचित है। हम इस संबंध में शीघ्र सुधारात्मक उपाय करने के लिए कार्यपालिका पर दबाव डालना आवश्यक समझते हैं।

(xxi) अनुसूचित अपराध की प्रकृति के संदर्भ में दंड की आनुपातिकता के बारे में तर्क पूरी तरह से निराधार है और इसे खारिज किया जाता है।"

58. डी.ओ.ई. की ओर से उपस्थित विद्वान विशेष लोक अभियोजक श्री हुसैन ने भी यह तर्क दिया है की मधु लिमये मामला (उपरोक्त) तथ्यों के आधार पर अलग है क्योंकि वहां याचिकाकर्ता को बिना किसी प्राथमिकी दर्ज किए एक गैर-संज्ञेय अपराध करने के लिए गिरफ्तार किया गया था और गिरफ्तारी के आधार पर सूचित नहीं किया गया था।इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 226 और 32 के तहत न्यायिक हस्तक्षेप केवल असाधारण मामलों में ही आवश्यक था, जहां गिरफ्तारी पर हिरासत दुर्भावनापूर्ण, बाहरी कारकों से प्रभावित या वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में पाई जाती है। उच्च न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय दोनों ही उल्लंघन किए गए अधिकारों की प्रकृति, विधायी इरादे और व्यक्तिगत अधिकार और सामाजिक हित के बीच संतुलन का आकलन करते हैं।हालांकि, मधु लिमये मामले (उपरोक्त) ने एक अपीलीय या संभागीय

न्यायालय की तरह यह निर्णय नहीं लिया कि क्या विवादित आदेश में कानून या तथ्य की त्रुटियां थीं।

59. यह मुद्दा रिट क्षेत्राधिकार के अंतर्गत नहीं आता है और आरोपित आदेश के विरुद्ध शिकायत की स्थिति में याचिकाकर्ता के पास दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय में जाने का विकल्प होगा।

60. दूसरे शब्दों में, श्री हुसैन द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि रिट याचिका मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उत्तरदायी नहीं है।

61. अपने तर्क को आगे बढ़ाने के लिए, यहाँ ऊपर चर्चा किए गए मुद्दे पर, श्री हुसैन ने विशेष न्यायालय के समक्ष आगे बढ़ने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के आवेदन के बिंदु पर पीएमएलए (धनशोधन निवारण अधिनियम) की धारा 46 का उल्लेख किया है।उन्होंने पी. एम. एल. ए. (धनशोधन निवारण अधिनियम) की धारा 47 का भी उल्लेख किया जो उक्त अधिनियम के तहत अपील और संशोधन के प्रावधान से संबंधित है और कहता है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973, जो अब बी. एन. एस. एस. (भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) है, विशेष न्यायालय में लागू होती है, जैसे कि उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर एक विशेष न्यायालय जहां सत्र न्यायालय उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर मामलों की सुनवाई करता है।

62. श्री हुसैन ने ***राणा अय्यूब बनाम प्रवर्तन निदेशालय के सहायक निदेशक के माध्यम से, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 109*** में प्रकाशित किए गए और ***सुभाष शर्मा बनाम प्रवर्तन निदेशालय,*** (एमसीआरसी संख्या 5288/2022) के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***प्रवर्तन निदेशालय बनाम सुभाष शर्मा*** (विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 1136/2023) में दिए गए अप्रकाशित निर्णय पर

भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि अनुच्छेद 22(2) का उल्लंघन पीएमएलए के तहत किसी आरोपी की गिरफ्तारी को पूरी तरह से अवैध बनाता है, क्योंकि उसे 24 घंटे के निर्धारित समय के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जाता है और इस संबंध में पीएमएलए के प्रावधान और बीएनएसएस की धारा 57, अब 58 के बीच कोई असंगति नहीं है। इस प्रकार, पीएमएलए की धारा 67 के आधार पर, बीएनएसएस की धारा 58 पीएमएलए के तहत कार्यवाही पर लागू होती है। पीएमएलए, दं.प्र.सं. और बीएनएसएस के उपर्युक्त प्रावधानों का संयुक्त अध्ययन डीओई को किसी आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का आदेश देता है।

63. श्री हुसैन ने आगे तर्क दिया कि निकटतम मजिस्ट्रेट प्रादेशिक क्षेत्राधिकार वाला मजिस्ट्रेट या अतिरिक्त प्रादेशिक क्षेत्राधिकार वाला मजिस्ट्रेट हो सकता है। गिरफ्तारी प्राधिकारी पर 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आरोपी को पेश करने का दायित्व है।यदि गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी को लगता है कि क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोपी को पेश करना संभव नहीं होगा, तो गिरफ्तारी के स्थान और मामले की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के बीच लंबी दूरी तक की यात्रा को देखते हुए। जब गिरफ्तार करने वाला प्राधिकारी यह मानता है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया जा सकता है, तो आरोपी को उसके सामने पेश करने के लिए आवश्यक यात्रा के समय को देखते हुए, गिरफ्तार करने वाले अधिकारी के लिए उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना अनिवार्य है।हालाँकि, यदि गिरफ्तार करने वाले अधिकारी को पता चलता है कि उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटों के भीतर उसे क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जा सकता है, तो इस तरह की

प्रस्तुति पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के अनुसार सवाल नहीं उठाया जा सकता है।

64. डीओई की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री हुसैन द्वारा प्रस्तुत तर्क का अगला भाग यह है कि पीएमएलए, राष्ट्रीय जांच एजेंसी की जांच करते समय, आईपीसी के तहत अपराधों से निपटने के दौरान दं.प्र.सं. की तरह कोई क्षेत्रीय सीमा शामिल नहीं करता है।

65. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने ***अभिषेक बनर्जी एवं अन्य बनाम प्रवर्तन निदेशालय*** के मामले का हवाला दिया, जिसकी प्रकाशित ***(2022) 2 एचसीसी (दिल्ली) 27*** में दर्ज की गई है और जिसकी प्रकाशित ***(2024) 9 एससीसी 2022*** में भी दर्ज की गई है।

66. श्री हुसैन द्वारा प्रस्तुत तर्क का सार यह है कि किसी अभियुक्त को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने पर ट्रांजिट रिमांड की आवश्यकता नहीं होती है।

67. अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान विशेष लोक अभियोजक ने ***गौतम नवलखा बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी*** के मामले का हवाला दिया, जिसकी प्रकाशित ***(2022) 13 एससीसी 542*** में दी गई है।

68. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि निकटतम मजिस्ट्रेट के पास अधिकार क्षेत्र हो भी सकता है और नहीं भी, जिसका अर्थ है कि डीओई ने अभियुक्त के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं किया है कि उसे अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए, यदि डीओई को लगता है कि उसे उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश किया जा सकता है।

69. दिल्ली उच्च न्यायालय ने ***सत प्रकाश यादव बनाम राज्य (दिल्ली सरकार)*** में भी यही सिद्धांत निर्धारित किया है, जिसकी प्रकाशित 2014 ***एससीसी ऑनलाइन डेल 3012*** में दी गई है; ***आनंद अग्रवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2018 एससीसी ऑनलाइन डेल 11713*** में प्रकाशित किया गया और ***राम कोटूमल इसरानी बनाम प्रवर्तन निदेशालय*** के मामले में एक अप्रकाशित निर्णय, माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा ***आपराधिक रिट याचिका (स्टाम्प) संख्या 15417/2023*** में दिया गया।

70. श्री हुसैन ने तत्काल बिंदु को प्रमाणित करने के लिए विभिन्न अन्य निर्णयों का भी उल्लेख किया है, यह न्यायालय सोचता है कि निर्णयों का संदर्भ हमारे मामले के उद्देश्य के लिए पर्याप्त होगा, बिना उसमें की गई टिप्पणियों का विवरण दिए, इस तथ्य के मद्देनजर कि अनुपात गौतम नवलखा (उपरोक्त) के पैराग्राफ 102 में निर्णायक रूप से तय किया गया है। श्री हुसैन द्वारा उद्धृत मामले हैं: -

(i) ***हरियाणा वित्तीय निगम एवं अन्य, (2008) 9 एससीसी 31*** में प्रकाशित किया गया।

(ii) ***कर्नाटक राज्य बनाम कुप्पुस्वामी गौंडर एवं अन्य, (1987) 2 एससीसी 74*** में प्रकाशित किया गया

(iii) ***फर्टिको मार्केटिंग एंड इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं अन्य, (2021) 2 एससीसी 525*** में प्रकाशित किया गया

71. श्री हुसैन ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***विजय मदनलाल चौधरी*** (उपरोक्त), ***सेंथिल बालाजी*** (उपरोक्त) और ***अरविंद केजरीवाल बनाम प्रवर्तन निदेशालय*** में दिए गए निर्णयों के संदर्भ में पीएमएलए की धारा 19 पर विस्तृत तर्क भी दिया है, जिसकी रिपोर्ट ***2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 1703*** में दी गई है।

72. अरविंद केजरीवाल (उपरोक्त) के पैराग्राफ 39 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली न्यायिक समीक्षा के दायरे और दायरे से निपटने का अवसर था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायिक समीक्षा एक लघु परीक्षण या योग्यता समीक्षा के बराबर नहीं है। यह अभ्यास यह पता लगाने तक सीमित है कि क्या विश्वास करने के कारण ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो यह स्थापित करती है कि गिरफ्तार व्यक्ति पीएमएलए के तहत अपराध का दोषी है। यदि डीओई द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त और उचित सावधानी बरती जाती है कि विश्वास करने के कारण पीएमएलए की धारा 19(1) के अनुसार गिरफ्तारी को उचित ठहराते हैं, तो न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग चिंता का कारण नहीं होगा। संदेह केवल तभी उत्पन्न होगा जब प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए कारण स्पष्ट और सुस्पष्ट नहीं होंगे और इसलिए गहन और गहन जांच की आवश्यकता है। अब, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि यदि रिमांड मजिस्ट्रेट किसी विशेष न्यायालय के तथ्यों और परिस्थितियों के संबंध में धारा 19 के मापदंडों पर विचार करने में विफल रहता है, तो रिमांड मजिस्ट्रेट के आदेश की समीक्षा करते समय उक्त तथ्य पर विचार करना उच्च मंच का काम है। उच्च न्यायालय पीएमएलए की धारा 19 के तहत प्रावधानों पर विचार करने में विफल रहने के लिए रिमांड मजिस्ट्रेट के आदेश पर दोष खोजने की शॉर्ट-कट प्रक्रिया नहीं अपना सकता है।

73. इसके विपरीत, उच्च न्यायालय को जांच के चरण में प्रथम दृष्टया संतुष्टि के लिए स्वतंत्र रूप से विचार करने का दायित्व है कि जांच एजेंसी के पास मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत यह मानने के कारण थे कि आरोपी पीएमएलए के तहत अपराध का दोषी है।

74. श्री हुसैन ने मुझे बीएनएसएस की धारा 187 (2) के तहत पीएमएलए की धारा 65 के साथ पढ़े गए आवेदन पर ले जाया, जो विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किया गया था, जहां डीओई ने मनी लॉन्ड्रिंग में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के बारे में विस्तार से बताया था। अपराध की आय को परत-दर-परत करने के लिए, आरोपी और उसके सहयोगियों ने अवैध आय को इस तरह से हस्तांतरित, परिवर्तित, उपयोग और छुपाया, जिसे निम्नलिखित प्रवाह चार्ट से अच्छी तरह से समझा जा सकता है: -

"30 लाख रुपये की राशि मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड (आरोपी संख्या 6) से मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन (आरोपी संख्या 16) और एक संबंधित इकाई को एक घुमावदार तरीके से हस्तांतरित की गई, जिसका उद्देश्य अपराध की आय को परत-दर-परत और छुपाना था, जिससे इसे बेदाग दिखाया जा सके।

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस
27.01.2024 को 30 लाख

रुपये मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन
27.01.2024 को 30 लाख रुपये

मेसर्स जगन्नाथ फाइनेंशियल
(उत्तम डागा के स्वामित्व वाली एक इकाई)
27.01.2024 को 30 लाख रुपये

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड (आरोपी संख्या 6) से मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन (आरोपी संख्या 16) और एक संबंधित इकाई को 55 लाख रुपये की राशि एक घुमावदार तरीके से हस्तांतरित की गई, जिसका उद्देश्य अपराध की आय को उजागर करना और उसे बेदाग दिखाना था।

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस
23.02.2024 को 55 लाख रुपये

मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन
23.02.2024 को 55 लाख रुपये

मेसर्स जगन्नाथ फाइनेंशियल
(उत्तम डागा के स्वामित्व वाली एक इकाई)
23.02.2024 को 55 लाख रुपये

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस

से 95 लाख रुपये की राशि एक घुमावदार तरीके से हस्तांतरित की गई मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड (आरोपी संख्या 6) से मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन (आरोपी संख्या 16) और एक संबंधित इकाई। अंततः, पुष्पराज बजाज (आरोपी संख्या 5) और सुनीता बजाज द्वारा 47.5-47.5 लाख रुपये प्राप्त किए गए, जिसका उद्देश्य अपराध की आय को उजागर करना और छिपाना था, जिससे यह बेदाग दिखाई दे।

मेसर्स प्रेरणा स्मार्ट सॉल्यूशंस
01.03.2024 को 1 करोड़ रुपये

मेसर्स माइनिंग एंड इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन
(उत्तम डागा द्वारा संचालित व्यवसाय)
01.03.2024 को 95 लाख रुपये

मेसर्स जगन्नाथ फाइनेंशियल
(उत्तम डागा के स्वामित्व वाली इकाई)

47.5 लाख रुपये 01.03.2024 | 47.5 लाख रुपये 01.03.2024

पुष्पराज बजाज | सुनीता बाजा

75. अपनी दलील समाप्त करते हुए, श्री हुसैन ने कहा कि एक प्रसिद्ध कहावत है कि न्यायालय का कोई भी कार्य किसी के प्रति पक्षपातपूर्ण नहीं होता।

76. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिंह ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि डीओई द्वारा याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पूर्व नियोजित थी, क्योंकि डीओई ने याचिकाकर्ता के घर में तलाशी और छापा मारा था और तलाशी की शुरुआत के साथ ही डीओई ने उसी तारीख को सुबह लगभग 08.35 बजे कोलकाता से शाम 05.40 बजे पटना के लिए इंडिगो की उड़ान के लिए उत्तम डागा, याचिकाकर्ता के नाम से हवाई टिकट खरीदा था, इसलिए तलाशी से पहले, पीएमएलए की धारा 19 के तहत कोई भी राय बनाने से पहले, डीओई ने याचिकाकर्ता को गिरफ्तार करने का फैसला किया।

77. इस संबंध में, यह तर्क दिया गया है श्री हुसैन ने कहा कि याचिकाकर्ता के नाम पर हवाई टिकट खरीदने का समय कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि ईडी अधिकारियों के पास यह मानने के कारण थे कि आरोपी अपनी गिरफ्तारी से पहले ही पीएमएलए के तहत अपराध करने का दोषी है।

78. अपने तर्क के समर्थन में, श्री हुसैन ने पीएमएलए की धारा 17 का हवाला दिया है कि तलाशी और जब्ती शुरू करने से पहले, ईडी के अधिकृत अधिकारी को यह मानने के कारणों के संबंध में राय बनानी चाहिए कि किसी व्यक्ति ने - (i) कोई ऐसा कार्य किया है जो मनी लॉन्ड्रिंग का गठन करता है (ii) या उसके पास मनी लॉन्ड्रिंग में शामिल किसी भी अपराध की आय है या (iii) उसके पास मनी लॉन्ड्रिंग से संबंधित कोई रिकॉर्ड है और (iv) उसके पास अपराध से संबंधित कोई संपत्ति है।

79. इस प्रकार, तलाशी और जब्ती से पहले, प्राधिकृत अधिकारी के पास पीएमएलए की धारा 17(1) के खंड (i) से (iv) के अस्तित्व के बारे में विश्वास करने के

कारण होने चाहिए। बाद की तलाशी और दागी धन, रिकॉर्ड या दस्तावेजों की बरामदगी, प्राधिकृत अधिकारी को पीएमएलए की धारा 19(1) के अनुसार अपराधी को गिरफ्तार करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

80. याचिकाकर्ता ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि गिरफ्तार करने वाले अधिकारी ने पीएमएलए की धारा 19 (1) के तहत इस तरह के विश्वास के कारणों को काले और सफेद रंग में दर्ज किया, गिरफ्तारी के आधार की प्रतिलिपि तैयार की और आरोपी को दी और पूरे तथ्य को विद्वान सीजेएम, पटना के विचार के लिए रिमांड आदेश में विस्तार से बताया गया। आरोपित आदेश ईडी द्वारा दायर आवेदन और "विश्वास करने के कारण" "गिरफ्तारी के आधार" आदि के बारे में दस्तावेजों के आधार पर पारित किया गया था।

81. इसलिए, पीएमएलए की धारा 19 (1) में परिकल्पित जादुई शब्द "विश्वास करने के कारण" को बताने में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की ओर से विफलता को एक अनजाने में हुई चूक के रूप में माना जाना चाहिए, न कि एक त्रुटि जो मामले की जड़ को छूती है।

82. इसके अलावा, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि रिमांड के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता का प्रभावी उपाय विद्वान विशेष न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय में जमानत के लिए प्रार्थना करने में निहित है। रिट न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक आदेश को रद्द करने का कोई अधिकार नहीं है, जब अन्यथा प्रभावी उपाय उपलब्ध है।

83. इस बिंदु पर कानून अब एकीकृत नहीं है। जमानत आवेदन को खारिज करने वाले आदेश को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर करके निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी जा सकती है: -

(i) जब यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है;

(ii) जब यह अप्रासंगिक और अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित है;

(iii) जब आदेश मनमाना या मनमानीपूर्ण है;

(iv) जब यह निचली अदालत द्वारा शक्ति का दुरुपयोग करता है;

(v) जब आदेश में मामले की विशिष्ट परिस्थितियों पर विचार नहीं किया जाता है; और

(vi) अंतिम लेकिन कम महत्वपूर्ण नहीं जब जमानत खारिज करने का आदेश भारत के संविधान के तहत निहित मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर आधारित हो।

84. ऐसे मामलों में, याचिकाकर्ता न केवल उत्प्रेषण या परमादेश के रिट के लिए प्रार्थना करके जमानत खारिज करने के माध्यम से रिमांड के विवादित आदेश को चुनौती दे सकता है, बल्कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में रिट के लिए भी प्रार्थना कर सकता है।

85. हालांकि, याचिकाकर्ता की वैकल्पिक राहत जमानत देने के लिए विशेष न्यायालय या उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में निहित है।

86. ***नीलम मनमोहन अत्तावर बनाम मनमोहन अत्तावर (2021) 16 एससीसी 536*** में रिपोर्ट की गई, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जब अभियुक्त को वैकल्पिक प्रभावी राहत उपलब्ध होती है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत

असाधारण क्षेत्राधिकार लागू नहीं होता है। पैराग्राफ संख्या 11 इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

> *11. याचिकाकर्ता जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और श्री बालाजी श्रीनिवासन, मूल प्रतिवादी के कानूनी प्रतिनिधियों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील को सुनने के बाद, हम इस विचार पर पहुंचे हैं कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका एक आदेश को चुनौती देने के लिए बनाए रखने योग्य नहीं होगी जो उच्च न्यायालय द्वारा अपनी न्यायिक शक्तियों के प्रयोग में पारित किया गया है। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है। केवल आदेश को एक आदेश के रूप में चुनौती देना जो शून्य है, एक वादी को अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका शुरू करके आदेश से उत्पन्न होने वाले परिणामों से बचने में सक्षम नहीं करेगा। एक वादी अपने उपचारों के बिना नहीं है। एक आदेश जो उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, या तो एक पत्र पेटेंट अपील में चुनौती दी जा सकती है (उन मामलों में जहां एक पत्र पेटेंट का उपाय पेटेंट अपील कानून में उपलब्ध है) या समीक्षा के माध्यम से (जहां समीक्षा का उपाय मामलों के एक निश्चित वर्ग में उपलब्ध है)। संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत पुनरीक्षण कार्यवाही में पारित उच्च न्यायालय के न्यायिक आदेश के खिलाफ एक वादी के लिए इस न्यायालय के समक्ष एक उपाय उपलब्ध है।"*

87. मेरी टिप्पणी को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राधिका अग्रवाल बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में हाल ही में दिए गए निर्णय से समर्थन मिलता है।

(रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 336/2018, 27 फरवरी, 2025 को तय की गई। उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 9 और 10 में यह निर्धारित किया गया है: -

> *"9. हालांकि, जब पीएमएलए, यूएपीए, विदेशी मुद्रा, सीमा शुल्क अधिनियम, जीएसटी अधिनियम आदि जैसे विशेष अधिनियमों के तहत की गई ऐसी गिरफ्तारी की वैधता को चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने में बेहद अनिच्छुक होना चाहिए। ऐसे मामलों में, शक्ति का प्रयोग केवल यह देखने के लिए सीमित होना चाहिए कि क्या वैधानिक और संवैधानिक सुरक्षा उपायों का ठीक से अनुपालन किया गया है या नहीं, अर्थात यह पता लगाना कि क्या अधिकारी अधिनियम के तहत अधिकृत अधिकारी था, क्या यह मानने का कारण कि व्यक्ति अधिनियम के तहत अपराध का दोषी था, अधिकृत अधिकारी के कब्जे में मौजूद "सामग्री" पर आधारित था या नहीं, और क्या गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधार के बारे में जल्द से जल्द सूचित किया गया था। गिरफ्तारी के बाद ही ऐसा किया जा सकता है। <u>अधिकारी द्वारा जिस सामग्री के आधार पर विश्वास बनाया जाता है, उसकी पर्याप्तता या तथ्यों की सत्यता जिसके आधार पर व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए ऐसा विश्वास बनाया जाता है, न्यायिक समीक्षा का विषय नहीं हो सकता।</u>*
>
> *10. यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि वैधानिक प्राधिकरण की व्यक्तिपरक संतुष्टि या राय पर न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अलग-अलग पहलू होंगे। <u>सेवा संबंधी मामलों में लागू व्यक्तिपरक संतुष्टि पर न्यायिक समीक्षा के मानदंड या पैरामीटर विशेष अधिनियमों के तहत की गई गिरफ्तारी के मामलों पर लागू नहीं किए जा सकते। व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए अधिकृत अधिकारी की व्यक्तिपरक राय या संतुष्टि की जांच न्यायिक समीक्षा का विषय नहीं हो सकती, क्योंकि जब विशेष अधिनियम के तहत अपराध के कथित कमीशन के बारे में</u>*

अधिकृत अधिकारी द्वारा संतुष्टि होने पर गिरफ्तारी की जाती है, मामला जांच या पूछताछ के बहुत ही प्रारंभिक चरण में होगा। ***"विश्वास करने के कारण" वाक्यांश का उपयोग करने का तात्पर्य है कि अधिकारी को अपने कब्जे में मौजूद सामग्री के आधार पर प्रथम दृष्टया राय या विश्वास बनाना चाहिए था कि व्यक्ति दोषी है या उसने संबंधित विशेष अधिनियम के तहत अपराध किया है। सामग्री की पर्याप्तता या पर्याप्तता जिसके आधार पर अधिकृत अधिकारी द्वारा ऐसा विश्वास बनाया गया है, जांच या जांच के ऐसे प्रारंभिक चरण में न्यायालयों द्वारा जांच का विषय नहीं होगा।***

(जोर दिया गया)

वर्तमान मामले में उपरोक्त में से कोई भी कारक उपलब्ध नहीं है।

88. यहां यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि याचिकाकर्ता ने बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की। इसलिए, इस न्यायालय के पास ऐसे मुद्दे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा अपने विस्तृत तर्क के दौरान उठाया गया एकमात्र मुद्दा यह है कि अभियुक्त की हिरासत अवैध है क्योंकि यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(2) और बीएनएसएस की धारा 187 का उल्लंघन है। रिट याचिका की प्रार्थना (सी) और (डी) में अभियुक्त को न्यायिक हिरासत से रिहा करने की प्रार्थना है, हालांकि, इस न्यायालय का विचार है कि रिट न्यायालय बीएनएसएस की धारा 483 के प्रावधान को शामिल करते हुए अभियुक्त को रिहा नहीं कर सकता है।

89. मेरा विचार है कि इस मामले के उद्देश्य के लिए इस बिंदु पर आगे कोई चर्चा आवश्यक नहीं है।

90. इस रिट याचिका का अंतिम निष्कर्ष, इसलिए, "निकटतम मजिस्ट्रेट" शब्द की व्याख्या पर निर्भर करता है। क्या इसका अर्थ है "निकटतम मजिस्ट्रेट" जिसका स्थान गिरफ्तारी के स्थान के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में है या यह शब्द मामले की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के अधिकार को समाहित करता है। उस इलाके में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश करने की आवश्यकता जहां उसकी गिरफ्तारी होती है जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी के बाद न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना आवश्यक होता है, तो उसे उस स्थान पर हिरासत में लिया जाता है जो उस अधिकार क्षेत्र से बहुत दूर है और इसलिए उसे 24 घंटे के भीतर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 22(2) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57, अब बीएनएसएस की धारा 58 द्वारा अनिवार्य है। ऐसी परिस्थितियों में, उसे डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति के साथ निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा। इसलिए, यहां तक कि जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष ट्रांजिट रिमांड आवेदन दायर किया जाता है, धारा 167 (1) दं.प्र.सं., अब बीएनएसएस की धारा 187, की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि केस डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति भी प्रस्तुत की जानी चाहिए। धारा 167 (2) के तहत केस डायरी में प्रविष्टियों के आधार पर ही ऐसा "निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट" गिरफ्तार व्यक्ति को कुल मिलाकर 15 दिनों से अधिक अवधि के लिए हिरासत में रखने का आदेश पारित कर सकता है। जहां उसके पास मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और वह आगे की हिरासत को अनावश्यक पाता है, वह आरोपी को क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का आदेश दे सकता है। गौतम नवलखा (उपरोक्त) में इस सिद्धांत पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय लिया था और इस न्यायालय ने पहले ही गौतम नवलखा (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 102 का उल्लेख किया है कि

निकटतम मजिस्ट्रेट के पास मामले की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र हो भी सकता है और नहीं भी। इसके विपरीत, यह न्यायालय यह मानने में कोई गलती नहीं करेगा कि यदि गिरफ्तार करने वाले अधिकारी के पास रिमांड के आदेश के लिए 24 घंटे के भीतर क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को पेश करने की गुंजाइश है, तो अनुच्छेद 22 (2) की आवश्यकता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

91. सत प्रकाश यादव (उपरोक्त) में, दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि किसी भी व्यक्ति को जो जिले के बाहर या राज्य के बाहर गिरफ्तार किया जाता है, उसे ट्रांजिट रिमांड प्राप्त करने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट / मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है। ट्रांजिट रिमांड का उद्देश्य भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22(2) के तहत निर्धारित 24 घंटे की अवधि के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष अभियुक्त को पेश करने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त करना है। चूंकि अपीलकर्ता को केवल एक घंटे के भीतर दिल्ली लाया जा सकता था, इसलिए नोएडा, गौतमबुद्ध नगर में संबंधित मजिस्ट्रेट की अदालत से ट्रांजिट रिमांड प्राप्त करना आवश्यक नहीं था।

92. तथ्यात्मक परिस्थितियों में मामला बिल्कुल समान है। डीओई ने पाया कि अभियुक्त को गिरफ्तारी के तुरंत बाद हवाई मार्ग से एक घंटे और दस मिनट के भीतर पटना लाया जा सकता था। डीओई ने उक्त मार्ग का सहारा लिया और आरोपी को ईडी की हिरासत में रिमांड के लिए एक आवेदन के साथ पटना के विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने रिमांड के लिए आवेदन के अवलोकन के बाद डीओई के साथ हिरासत में रिमांड का आदेश पारित किया। आवेदन में विश्वास करने के कारणों और गिरफ्तारी के आधार के बारे में विस्तृत बयान शामिल थे। मुझे सत प्रकाश यादव (उपरोक्त) में माननीय दिल्ली उच्च

न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आज तक इस मुद्दे पर कोई विपरीत दृष्टिकोण नहीं लिया गया है।

93. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता बीएनएसएस की धारा 58 में निहित प्रावधानों पर बहुत जोर देते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 22 (2) को बीएनएसएस की धारा 58 के साथ पढ़ा जाए तो डीओई द्वारा तत्काल मामले में उल्लंघन किया गया था।

94. उपरोक्त दोनों प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने पर पता चलता है कि संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार, यात्रा में लगने वाले समय को छोड़कर, दिल्ली में दर्ज मामले के तहत रायपुर में सीबीआई द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए। केवल तभी जब यात्रा में 24 घंटे से अधिक समय लगने की संभावना हो, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को स्थानीय मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए और ट्रांजिट रिमांड प्राप्त किया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 22(2) में, 24 घंटे की अवधि की गणना करते समय, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने के लिए यात्रा के समय को छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटे से पहले पेश नहीं किया जा सकता है, तो उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए।

95. वर्तमान मामले में, आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश किया गया था। इसलिए, गिरफ्तारी के स्थान के निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष उसे पेश करने की आवश्यकता अनिवार्य नहीं थी।

96. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिंह ने "निकटतम मजिस्ट्रेट" शब्द की संकीर्ण और पांडित्यपूर्ण व्याख्या करने का प्रयास किया है। यदि संविधान के अनुच्छेद 22(2) को बीएनएसएस की धारा 187 के साथ व्याख्या करने के लिए ऐसा दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी की अधिकारिता क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त को पेश करने की शक्ति को सीमित कर देगा, भले ही उसके पास उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर पेश करने की गुंजाइश हो। यदि ऐसा दृष्टिकोण अपनाया जाता है, तो न्यायालय ऐसे निर्माण के पक्ष में झुकेगा जो क़ानून को निरर्थक बना देता है। किसी क़ानून या उसमें किसी अधिनियमित प्रावधान की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए कि वह इस कहावत में व्यक्त सिद्धांत पर प्रभावी और क्रियाशील हो: - *"यूट रेस मैगिस वैलेट क्वाम पेरेट"।*

97. न्यायालय किसी क़ानून की संवैधानिकता पर निर्णय देते समय संवैधानिकता के पक्ष में एक अनुमान से शुरू करते हैं और एक ऐसे संविधान को प्राथमिकता देते हैं जो क़ानून को विधानमंडल की क्षमता के भीतर रखता है।

98. इस बिंदु पर, यह न्यायालय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ***कलकत्ता निगम एवं अन्य बनाम लिबर्टी सिनेमा*** में दिए गए निर्णय का संदर्भ देता है, जिसे ***एआईआर 1965 एससी 1107*** में रिपोर्ट किया गया है।

99. अभियुक्त का अधिकार 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष उसके प्रस्तुतीकरण की संवैधानिक और वैधानिक आवश्यकता पर निर्भर करता है। यदि गिरफ्तार करने वाला अधिकारी पाता है कि उसे 24 घंटे के भीतर क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है, तो अभियुक्त को उस निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जहां उसे गिरफ्तार

किया गया है। यदि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए बिना 24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है, तो उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना जाता है।

100. तथापि, इस मामले में ऐसा कोई उल्लंघन नहीं हुआ।

101. ऐसी परिस्थितियों को देखते हुए तथा उपरोक्त चर्चा की पृष्ठभूमि में, मेरे पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि इस रिट याचिका में कोई दम नहीं है।

102. तदनुसार, रिट याचिका को चुनौती दिए जाने पर खारिज किया जाता है।

103. तथापि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(बिबेक चौधरी, न्यायमूर्ति)

एस. के. एम./उत्तम/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।